UNIVERSAL LIBRARY
OU_178977

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891 K76K Accession No. G.H. 3175

Author शंकर कुरुप, जी

Title कवि श्री माला : मलयालम 1962

This book should be returned on or before the date last marked below

कवि-श्री माला

*** मलयालम ***

कवि

जी. शंकर कुरुप

सम्पादक–अनुवादक

एम. श्रीधर मेनोन

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट
मन्त्री :
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण—३०००
मई, १९६२
मूल्य—रु. २/-

● ● ●

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ मे पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमे रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमे रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमे प्रवाहित विचार-धारामे एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

मलयालममे कुछ ऐसी विशिष्ट ध्वनियाँ है जो देवनागरीमे नही है। मलयालममे 'ए' और 'ओ' के ह्रस्व रूप भी है। उन रूपोको सूचित करनेके लिए इस पुस्तकमे क्रमशः ॅ और ॉ चिह्न रखे गए है; यथा—ऍन्ट्टॖ, और यॉत्रु। इसी तरह निम्नांकित विशिष्ट ध्वनियाँ भी द्रष्टव्य है :—

ष़ – मूर्धन्य, असंघर्षी ध्वनि; यथा—त्रेष़ु।

ऱ – मूर्धन्य, पार्श्विक, कम्पित ध्वनि; यथा—कीऱ।

ट़ – वर्त्स्य, स्पृष्ट ध्वनि; यथा—पाम्पिन्ट़्।

इनके अतिरिक्त मलयालममे 'न' के भी दन्त्य और वर्त्स्य दो रूप है, किन्तु उनके लिए पृथक ध्वनि चिह्न नही दिए गए है।

श्री एम. श्रीधर मेनोनजीने प्रस्तुत पुस्तकमे संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमे प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
मलयालम-साहित्य-परिचय [सन् १९२० से आजतक]	१
कवि-परिचय	२३
काव्य-सञ्चय	५१

कवि-श्री माला

मलयालम

जी. शंकर कुरुप

मलयालम साहित्य परिचय

[१९२० से आज तक]

मलयालम भाषा और उसका साहित्य

• • •

[प्रारम्भमे सन् १९२० तक के मलयालम साहित्य का संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्री माला वल्लत्तोळ नारायण मेनन' मे दिया गया है।]

भारतीय साहित्यकी वीसवी शताब्दीका इतिहास ठीक तरहसे समझनेके लिए तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियोकी जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह आन्दोलनमे सफलता प्राप्त करके महात्मा गॉधीके भारतमे आनेसे पहले तक भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम सार्वजनिक एव सार्वदेशिक रूप नही ग्रहण कर सका था। हाँ, बगाल-विभाजन आदिके कारण एवं 'लाल', 'बाल', 'पाल' आदि नेताओके प्रयत्नोके फलस्वरूप देशके निवासी जागरूक हो रहे थे; लेकिन निम्न स्तरके लोगो—किसानो और मजदूरोका उसमे बहुत कम हिस्सा था। आन्दोलनकी परिपाटियोको निश्चित करने और उसे चलानेकी रीति-नीति निश्चित करनेमे पढे-लिखे और मध्यम वर्गके लोगोका ही अधिक हाथ था। बिना हथियार लिये आत्माके बलपर लड़ने, बिना द्वेष मनमे रखे कष्टोंका सामना करने और उन्हे सह लेने, विपक्षियोकी आत्मा एव नैतिकतासे अपील करने, बुराईका विरोध करते हुए भी बुरे लोगोंसे प्रेम करने और दूसरोंकी त्रुटियों तथा अवगुणोंकी छान-बीनमे जितनी तत्परता दिखाई जाती है, उतनी तत्परतासे अपनी ही कमियों और भूलोको

खुले तौरमे मानने-प्रकट करनेकी परम्पराको धीरे-धीरे पुरस्सर किया जाने लगा था। भारतीय इतिहासके जिस युगको हम 'गाँधी-युग' कहते है, वह बीसवी शताब्दीके दूसरे दशकसे ही शुरू होता है। गाँधीजीकी राजनीति गुप्त नही थी, बल्कि वह अत्यन्त स्पष्ट थी। उसमे किसी प्रकारका भी दुराव नही था। विपक्षियोमे अपने दाँव-पेचोको छिपाकर रखने और उनकी असावधानताकी स्थितिमे उनपर वार करनेकी उनकी नीति नही थी।

दूसरी विशेषता यह थी कि गाँधीजी राजनैतिक परिवर्तन मात्रमे सन्तुष्ट नही थे। ससारके इतिहासमे ऐसे नेता शायद ही पाये जाएँगे जिन्होने गाँधीजीकी तरह मानव-जीवनके हर पहलूको प्रभावित किया हो और जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे सुधारका प्रयत्न किया हो। गाँधीजीका आन्दोलन सार्वजनिक एकमात्र था इसलिए ही नही कि उसमे भारतीय समाजके सभी स्तरोके लोग शरीक हुए, बल्कि इसलिए कि उसने मनुष्य-जीवनके सभी अगोपर अपना असर डाला। सक्षेपमे, स्वतन्त्रताका आन्दोलन तथा प्राप्ति और बादके राष्ट्रीय पुनर्विधानके प्रयत्न---ये ही बीसवी शताब्दीके भारतीय इतिहासकी प्रमुख घटनाएँ है। इन दिनोमे केरलके लोगोने भी हिस्सा बँटाया था। कोचीन और तिरुविताकूरके देशी राज्योके निरकुश शासनके खिलाफ हलचल मच रही थी। मलाबारका आन्दोलन भारतके बृहत् आन्दोलनका एक भाग ही था। इन सबका प्रभाव जहाँ देशकी दूसरी भाषाओं के साहित्यपर पडा था वहाँ मलयालम साहित्यपर भी उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। हिन्दू-मुसलमानोके वैमनस्य आदिकी जो समस्याएँ उत्तर भारतमे थी वे केरलवासियोकी समस्याएँ न होनेके कारण उनका चित्रण यहाँके साहित्यमे बहुत कम पाया जाता है। दहेज-प्रथाके बुरे नतीजे केरलमे दिखाई नही देते थे। यद्यपि किसी-किसी समुदायमे---ब्राह्मणो और ईसाइयो आदिमे---यह रिवाज था तो अवश्य; लेकिन स्त्रियोको या तो मायकेमे, अथवा ससुरालमे पुरुषोके समान आर्थिक अधिकार प्राप्त थे। अत. ऐसी सामाजिक समस्याओका विवरण और समाधान मलयालमकी रचनाओमे कम पाया जाता है। उसी तरह जमीदारो-किसानोका सवाल भी उतना भीषण नही था जितना उत्तरमे। बेदखली, लगानकी बढती, भूमिहीन खेतिहरो और मजदूरो आदिकी समस्याएँ तो थी ही जो बादको कानून द्वारा कुछ हद तक सुलझाई गई। उसी प्रकार औद्योगिक मजदूरोकी भी समस्या थी। अवर्ण-सवर्णका भेद, भिन्न-भिन्न जातियोमे मनमुटाव ये सब बाते केरलमे भी पाई जाती थी। अत इन सब बातोका चित्रण उपन्यासो, कहानियो, कविताओ और नाटकोमे देखनेको मिलता है।

साहित्यमे समाजका अधिकाधिक चित्रण बीसवी शताब्दीकी एक विशेषता है। इस शताब्दीमे साहित्य अवकाशके क्षणोमे मनोरञ्जनका साधन मात्र न होकर जीवन और उसकी प्रगतिके चित्रणका माध्यम हो गया। साहित्य पीड़ित मानवता का पक्षधर बना। साहित्यमे कथापात्रोके रूपमे सामान्य जन भी चुने जाने लगे।

कुमारन्-आशानके "दुरवस्था" नामक खण्ड-काव्यका नायक ही 'चात्तन्' नामक एक हरिजन युवक है।

बीसवी शताब्दीके कवियो और लेखकोंमे ऐसा कोई भी नही है कि जिसे राज्याश्रय मिला हो। साहित्यके जनताके बीचमे आनेका शायद यह भी एक कारण रहा हो। कवि और लेखक अब आमतौरसे जनताके बीचसे ही पैदा होने लगे और इसलिए यह बिलकुल स्वाभाविक हो उठा कि साहित्यकार अपने चारों ओरकी दशाओ और लोक-जीवनकी आशा-निराशा, हास्य-रुदन और जय-पराजयका चित्रण करना आरम्भ कर दे।

कवियोंके उपर्युक्त दृष्टि-परिवर्तनकी सूचना पूर्वकालकी कुछ फुटकर रचनाओसे पाई जाती है। परन्तु बीसवी शताब्दीके मलयालम साहित्यमे उच्च मध्यवर्गीय तथा निम्न-मध्यवर्गीय लोगो और ठेठ निम्न वर्गीय किसानो-मजदूरोके जीवनका चित्रण अपवाद न होकर साधारण बन गया। देशकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और अन्य प्रकारकी समस्याओंका विवरण भी इस युगकी रचनाओमे मिलता है।

सन् १९२० के बाद कोई भी उल्लेखनीय महाकाव्य प्रस्तुत नही हुआ। इस कालमे खण्ड-काव्यो तथा गीति-काव्योका ही बोलबाला रहा। सस्कृत छन्दोका राज तिरोहित हो गया और कवि गण मलयालमके निजी वृत्तोका (जो मात्रिक है) प्रयोग करने लगे। प्रचलित 'मजरी', 'केका', 'तरगिणी' आदि वृत्तोके अलावा कई अप्रचलित प्राचीन वृत्तोंकी खोज और पुनरुज्जीवन किया गया और उनका प्रयोग दिनो दिन बढने लगा। सस्कृत और मलयालम मिश्रित शब्दावलीके स्थानपर सरल, प्रचलित सस्कृत शब्दोका ही अब प्रयोग होने लगा। सस्कृत भाषा, साहित्य तथा समीक्षा-शास्त्रका ज्ञान कवियो, साहित्यकारो और समालोचकोंके बीचमे बिलकुल लुप्त हो गया है। किसी-किसी लेखकने—जैसे जी शकर कुरुप-गद्य-कविता अर्थात् लयपर आधारित गद्यका प्रयोग भी किया है। लेकिन यह शाखा पनपने न पाई। मलयालमकी कविताएँ वर्ण या मात्रा पर आधारित गेय पदोमे ही की जाती है।

गद्यके क्षेत्रमे उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि सभी मे वृद्धि हुई। भाषा सस्कृतके अनुचित प्रभावसे मुक्त होकर अधिकाधिक व्यावहारिक हो गई। अँग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओके उत्कृष्ट ग्रन्थोका अनुवाद जारी रहा और भारतीय भाषाओमेसे हिन्दी, बगला आदि भाषाओके ग्रन्थोके भी अनुवाद हुए। अलकार, छन्द, रस आदिपर आधारित सस्कृत समीक्षा पद्धति तो रही ही पर साथ ही साहित्यके सामाजिक, आर्थिक आदि मूल्योका निर्धारण पाश्चात्य सिद्धान्तोके आधारपर भी हुआ। इसी प्रकार किसी रचनाके व्यक्ति तथा समाजपर पड़नेवाले सामान्य प्रभावकी ओर भी यहाँके समालोचकोंका ध्यान जाने लगा।

तत्कालीन परिवर्तनोंके कारणोंका श्री एन. कृष्ण पिल्लाने अपनी "कैरळीकी कथा" में इस प्रकार उल्लेख किया है :—

१. पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली।
२. मुद्रणालयों तथा पुस्तकालयों-वाचनालयोंकी वृद्धि।
३. संस्कृतके ज्ञानका कम होना और संस्कृत ग्रन्थ रचना-परम्पराका अस्त होना।
४. साहित्यका समाजके ऊपरी स्तरसे नीचेके स्तर तक व्याप्त हो जाना।
५. अँग्रेजी तथा अन्य विदेशी उच्च साहित्यके और भारतीय साहित्योंके परिचयकी प्राप्ति।
६. साहित्यका मूल समाज है और वह समाज-सुधारका साधन हो सकता है—इस धारणाकी स्वीकृति।
७. आम जनताकी साहित्यमे अभिरुचिकी वृद्धि और फलस्वरूप भाषा तथा विषयको उसके अनुकूल बनानेकी ओर ध्यान दिया जाना।
८ परम्परागत साहित्यिक धाराओंका क्षय।
९. पत्रकारिताकी वृद्धि तथा गद्यका विकास।
१०. राजनीतिका साहित्यमे प्रवेश।
११. साहित्यकारोंका सार्वदेशिक दृष्टिकोणकी स्वीकृतिके लिए सन्नद्ध हो जाना।
१२. सिद्धान्तोंके प्रचार करनेवाले साहित्यका पुष्ट हो जाना।
१३. मलयालम साहित्यका भारतके अन्य प्रदेशोमे परिचित हो जाना।
१४. समाजके सभी स्तरोंसे साहित्यकारका आविर्भाव।
१५. जीवनकी अनभूति ही साहित्यमे प्रधान है—इस सिद्धान्तकी मान्यता।

सन् १९०४ तक कोट्टयमकी 'भाषा पोषिणी सभा' (जो सन् १८१२ में कवि-समाज नामसे सगठित हुआ थी) कवियों और साहित्यकारोके लिए एक आम रङ्गमञ्च रही। 'मलयालम मनोरमा' के सम्पादक कण्टत्तिल् वरुगीस माप्पिळा ही इसके प्राण थे। इस सभाके तत्वावधानमे वार्षिक समारोह किए जाते थे और साहित्यकार एक दूसरेसे मिलकर विचार-विनिमय करते थे। लेकिन कण्टत्तिल् वरुगीस मप्पिळाकी मृत्युके बाद इस सभाकी प्रवृत्तियाँ क्षीण होती गई और सन् १९११ मे यह सस्था पूर्ण रूपसे अस्त हो गई। कुछ वर्षोके उपरान्त 'समस्त केरळ साहित्य परिषद्' की स्थापना हुई, जो अबतक 'भाषा पोषिणी सभा' का ही कार्य चलाती आ रही थी। लेकिन हालमे भीतरी फूटों और अधिकार लिप्सा एवं तज्जन्य कलहोके कारण यह बहुत दुर्बल हो गई है।

सन् १९३७ मे एक 'जीवत्साहित्य समिति' की बैठक तृश्शिवपेरूरमें बुलाई गई। इस बैटकमे 'पुरोगमन साहित्य समिति' नामक संस्था की स्थापना हुई। कह

को तो यह कहा गया था कि मानवता और मनुष्यकी प्रगति ही इसका लक्ष्य है, लेकिन बादमें समष्टिवादी दलके चंगुलमे फॅस जानेके कारण इसमे फूट पैदा हो गई और असमष्टिवादी लेखक इससे बाहर आ गए। 'केरळ कला मण्डल' की स्थापना (सन् १९३२) से 'कथकलि,' 'माहि निचाट्टम' जैसी प्राचीन कलाओंका उद्धार, सुधार और प्रचार होने लगा। सन् १९४५ मे साहित्यकारोंकी एक प्रकाशन संस्था 'साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ' नामसे स्थापित हुई जो आजकलका सबसे बड़ा प्रकाशनगृह माना जा सकता है। प्राचीन ग्रन्थोंकी खोज तथा प्रकाशनके लिए तिरुवितांकूरमे "हस्तलिखित ग्रन्थालय" तथा कोर्चीनमे "कोच्चि-भाषा परिष्करण कमेटी" की स्थापना भी हुई। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारोंद्वारा सगठित साहित्य अकादमियों और संगीत-नाटक अकादमियो, आकाशवाणी, केरळ कला परिषद्, 'केरळ कला समिति,' 'चित्र कला परिषद्,' 'ग्रन्थशाला समिति' आदि संस्थाओं द्वारा भी साहित्य तथा कलाके क्षेत्रमे कुछ ठोस काम चल रहा है।

'केसरी' के सम्पादक स्वर्गीय ए. बालकृष्ण पिल्लाने मलयालमके साहित्य-कारों तथा समालोचकोको पाश्चात्य साहित्यके रूढ़िवाद (Classicism), स्वच्छन्दतावाद (Romanticism), यथार्थवाद (Realism), प्रकृतिवाद (Naturalism), प्रतीकवाद (Symbolism) आदि वादों तथा मनोविज्ञान, समाज विज्ञान और अन्य विज्ञानोकी शाखाओपर आधारित आलोचना विधियोसे परिचित कराया। जीवन पर्यन्त आचार्यके रूपमे नई पीढ़ीके लेखकोंको प्रोत्साहित करते रहे।

इसी कालमें कलाकी निरपेक्षता तथा आनन्दवाद और सापेक्षता तथा उपयोगितावादमे भी संघर्ष चला। उसी तरह साहित्यके शाश्वत मूल्यों और परिवर्तनशील मूल्योंमे भी द्वन्द्व हुआ। काव्यको सामाजिक बनानेकी प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि भाव और रूप दोनोंमे प्राचीन विधियोंके स्थानपर तत्कालीन जीवनका चित्रण होने लगा। धीरे-धीरे 'रूप भद्रतावाद' और 'भाव भद्रतावाद' की विचारधारा भी जोर पकड़ने लगी। वैसे, देखा जाय तो यह सारा वाद-विवाद अनावश्यक ही था।

इतिहासपरक ग्रन्थोके अन्तर्गत इस कालमे भाषा तथा साहित्यके इतिहासको लेकर कई ग्रन्थ प्रस्तुत हुए। ग्रन्थोका प्रणयन तो कई वर्षोकी खोजोंके फलस्वरूप हुआ। पी. गोविन्द पिल्लाका 'भाषा-चरित्र' ही इस शाखाका सर्वप्रथम ग्रन्थ है। यह सन् १८८१ मे प्रकाशित हुआ था। उल्लूर परमेश्वर अय्यर, आड्डूर कृष्ण पिषारति, आर. नारायण पणिक्कर आदि लेखकोंके भाषा एव साहित्यके इतिहासके ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। डॉ. गोदवर्माका 'केरलभाषा विज्ञानीयम्', इलंकुलम् कुञ्ञन पिल्लाके 'केरल भाषयुटे विकास परिणामङ्ङळ' (केरल भाषाके विकास-परिणाम) तथा 'भाषयुं साहित्यवु नूट्टाण्टु कळिलूटे' (भाषा और

साहित्य सदियोसे होकर) पी. शंकरन् नंपियारका 'औरु संक्षिप्त साहित्य चरित्रम' (साहित्यका एक संक्षिप्त इतिहास), माट श्शेरि माधव वारियर का 'कुंचनु शेषम्' (कुंचनके बाद), टी. एम. चुम्मारके 'पद्यसाहित्य चरित्र' तथा 'गद्य साहित्य' चरित्रम्", पी. के. परमेश्वरन् नायरके 'आधुनिक मलयाल चरित्रम्', जी. के परमेश्वरन् नायरके 'आधुनिक मलयाल चरित्रम्' तथा 'मलयाल साहित्य चरित्रम्' एन्. कृष्णपिल्लाका 'कैरळियुटे कथा' (कैरळीकी कहानी), 'साहित्य प्रवर्त्तक' सहकरण संघ द्वारा सम्पादित 'साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे' (साहित्य चरित्-प्रवृत्तियोके रूपमे), वटक्कुंकूर राजराजवर्माका 'सस्कृत साहित्य चरित्रम्' आदि ग्रन्थ भी प्रधान है। इसके अतिरिक्त नम्पूतिरियोकी 'सघक्कळि', कूत्तु, कूडियाट्टम् कथकळि, चम्पू, उपन्याम, कहानी आदि भिन्न-भिन्न शाखाओका विस्तृत इतिहास भी लिखा गया है।

भाषाके प्राचीन रूपों और साहित्यके प्राचीन ग्रन्थोंकी खोजका कार्य भी काफी परिमाणमे, 'उण्णुनीली सदेशम्,' 'लीलातिलकम्', 'कृष्ण गाथा आदि प्राचीन कृतियोके नए संस्करण-खोजपूर्ण भूमिकाएँ सहित निकले है। पी. वी. कृष्णन नायरने 'रामचरितम्' की एक नई व्याख्या समालोचना सहित निकाली है और डॉ. के. एम्. जार्जने उसकी भाषा पर एक 'थीसिस' लिखी है। 'हस्तलिखित ग्रन्थालय' तथा 'कोच्चि भाषा परिष्करण कमिटि' द्वारा भी कई प्राचीन ग्रन्थोकी खोज तथा प्रकाशन हुआ है। पत्मनाभ पिल्लाका 'शब्दतारावली' तथा नारायण पणिक्करका 'नवयुग भाषा निघंडु'—ये दो कोश भी इसी कालमें निकले। विश्वविद्यालयकी तरफसे एक नए बृहत् शब्द कोशपर काम चल रहा है।

अब 'देश चरित्र' लिया जाए। केरळके इतिहासके सम्बन्धमे खोज जारी है। 'तिरुवितांकूर मान्वल्', 'कॉच्चि मान्वल्' तथा 'मलबार मान्वल्' इस दिशाके प्रथम प्रयत्नोमेसे है। पी. शकुण्णि मेनोन का 'तिरुवितांकूर चरित्रम्', के. एम. पणिक्करके "मलबारु परकिकळुम्" (मलाबार तथा पुर्त्तगीज लोग) तथा 'मलबारु लन्तक्कारुम्' (मलाबार और डच लोग) आदि भी इस शाखाके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ है। चट्टम्पी स्वामी द्वारा लिखित 'प्राचीन मलयालम' मे नम्पूतिरियो तथा नाग जातियो (नायर लोग) का इतिहास प्रस्तुत है। आट्टूर कृष्ण-पिषारतिका 'केरळ चरित्रम्', पी. ए. सैद मुहम्मदके 'चरित्र केरळम्' आदि सचारिकळ कट केरळम् (पर्यटको द्वारा देखा हुआ केरळ) आदि भी मशहूर है। कॉट्टारत्तिल् शकुण्णिने व्यक्तियों, वस्तुओं, मन्दिरो आदि पर प्रचलित जनश्रुतियों और एतिह्योंको 'एतिह्यमाला' के सात-आठ भागोंमे सगृहीत किया। प्राचीन केरलके इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली कई बाते हम ए. बालकृष्ण पिल्ला, इळकुळम् कुञ्ञन पिल्ला आदि लेखकोके लेखो तथा ग्रन्थोमे देख सकते है। इळकुळम् 'केरळचरित्रत्तिले इरुळटञ्ञ एटुकळ' (केरलके इतिहासके अन्धकार-भरे पन्ने), 'चिल केरळ चरित्र प्रश्नङ्ळ्' (केरळके इतिहासकी कुछ समस्याएँ) आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

भारतीय तथा ससारके इतिहासके सम्बन्धमे पाठ्य पुस्तकोंको छोड़कर कोई प्रधान ग्रन्थ अब तक नहीं निकला। लेकिन कई प्रसिद्ध ग्रन्थोके अनुवाद तो हो चुके है, जिनमे डॉ. राजेन्द्रप्रसादका "India divided", श्री जवाहरलाल नेहरूके "Discovery of India" और "Glimpses of world history", स्व. एच. जी. वेल्सका "A short history of the world", श्री एम. पणिक्करका "A survey of Indian history" के अनुवाद उल्लेखनीय है । हालमें के वी. गोपाल मेनोन द्वारा 'विश्वचरित्राव-लोकनम्' नामक (यात्रा साहित्य) विश्वके इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाला एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

'जीवन चरित्र' तथा 'सञ्चार-साहित्य' के अन्तर्गत १९२९ के कोट्टयम्में चलाये हुए साहित्य परिषद्के निर्णयके अनुसार तोमस पोलने कई साहित्यकारोकी जीवनियाँ प्रकाशित की थी। विद्वान् ए डी. हरिशर्मा, पल्लिप्पाट्टु कुञ्ञिकृष्णव आदि ने भी ऐसी कई जीवननियाँ लिखी है। इसके अलावा केरल आदि बाहरके राजनैतिक धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रोके स्वर्गीय एव वर्तमान कई नेताओंकी जीवनियाँ मलयालम्मे निकली है। इस दिशामे काम रुका नही है, बल्कि अब भी चल ही रहा है। आत्मकथाके ढगपर भी कई जीवन-चरित्र प्रस्तुत हुए, जिनमे देशाभिमानी रामकृष्ण पिल्लाकी पत्नी बी. कल्याणि अम्मा, के. पी. केशव मेनोन ('मातृभमि' के प्रधान सम्पादक), पी. के. नारायण पिल्ला (साहित्यके समालोचक), ई. वी. कृष्ण पिल्ला (साहित्यकार), सी. बी.रामन पिल्ला (ऐतिहासिक उपन्यासकार) आदिके सस्मरण प्रसिद्ध है। किसी-किसी लेखकने कई साहित्यकारो तथा नेताओके तूलिका चित्र (Pen-portraits) भी प्रस्तुत किए है। जिनमे किसी कविके जीवनका, कुछ छोटी-मोटी रेखाओंमे (जिन्हे लेखक महत्वपूर्ण मानते है) चित्रण होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद आदि तथा देश-विदेशके भी कई नेताओंकी आत्मकथाएँ तथा जीवनियाँ मलयालममे अनूदित हो चुकी है।

'सञ्चार साहित्य' का आरम्भ और विकास भी इसी युगमे हुआ। इस शाखामे भी प्राचीन-नवीन कई कृतियोका भाषान्तर हुआ है; उदाहरणार्थ .—मार्को-पोलो, ह्युन्साग आदि की रचनाएँ। एन. बी. कृष्णवारियर, एम. के. पोहेक्काड्, के सी. पीटर आदि इस शाखाके प्रधान लेखक है। अठारहवी सदीके उत्तरार्द्धमे अपने रोम-यात्राका विवरण देते हुए तोमा पादरीने जो 'वर्तमान पुस्तक' लिखी थी, वही इस शाखाका सर्वप्रथम ग्रन्थ है। बादको इग्लैण्डमे बैरिस्टरीकी पढाईके अवसरके अपने अनुभवोपर के. पी. केशव मेनोनने 'बिलात्तिविशेषङ्ङळ्' (बिलायतके समाचार) लिखा। मिसेज कुट्टन नायरका 'ञान् कंट यूरोप' (मेरा देखा यूरोप), इराळिल् जोसफका 'ञानकट अमेरिका' (मेरा देखा अमेरिका) दो और ग्रन्थ है।

के. एम. पणिक्कर और के. पी. एस. मेनोनकी चीन यात्राओंके विवरण मलयालममें निकले हैं। ए. के. गोपालन्, मुंडश्शेरी जोसफ, ई. एम. शंकर नम्पूतिरिप्पाडु आदि समष्टिवादी नेताओंने भी अपनी चीन और रूस यात्राके अनुभवोंपर लेख, ग्रन्थ आदि प्रकाशित किए हैं। कहानी तथा उपन्यासके क्षेत्रमें यश-प्राप्त पोट्टेक्काडु एक सञ्चारी हैं। भारत, दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफ्रीका, यूरोप आदि देशोंमें कई यात्राएँ करके उन्होंने पाँच-छह पुस्तकें लिखी हैं। उत्तर भारत, इंग्लैण्ड, तथा अमेरिकाके अपने पर्यटन पर ए. वी. कृष्ण वारियाद्वारा लिखित साहित्य भी प्रसिद्ध है। के. सी. पीटर अपने निजी अनुभवपर जापान तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाके विवरण देते हैं। इसके अलावा अन्य संचारियोंके यात्रा विवरणोंसे संकलन करके तिब्बत अफ्रीका आदि देशोंकी परिस्थितियोंका भी उन्होंने वर्णन किया है। आज सबके द्वारा अपने-अपने पर्यटनोंका विवरण दिया जाना एक फैशन-सा हो गया है। इनमें से कई केवल दर्पण ही हैं—अर्थात् कोई लेखक जैसा देखते हैं वैसा लिख देते हैं। किसी-किसीने अपने यात्रा-विवरणोंमें अन्य देशोंकी हालतपर खण्डन-मण्डनात्मक अपने अभिप्राय भी दिए हैं।

धार्मिक तथा दार्शनिक शाखाके अन्तर्गत आनेवाले अधिकांश ग्रन्थ पुराण, उपनिषद्, नारायणीयम्, भगवद्गीता आदि प्राचीन ग्रन्थोंकी व्याख्याये और अनुवाद ही हैं। गाँधीजी तथा विनोबा भावेकी गीता-व्याख्याओं और विवेकानन्द तथा श्रीरामकृष्ण परमहंसकी रचनाओंके मलयालम संस्करण निकले हैं। तृश्शिवपेरूरके पासके श्रीरामकृष्णाश्रमके द्वारा आजकल स्वामी विवेकानन्दकी सारी कृतियोंका अनुवाद निकाला जा रहा है। स्वामी ज्ञानानन्द सरस्वती 'परम पुरुषार्थम्' नामक अपने मासिक पत्र द्वारा प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंका सार संग्रह प्रकाशित करते आ रहे हैं। पी. गोपालन नायरने श्रीमद्भागवत, ब्रह्मसूत्र और शाङ्करभाष्यकी व्याख्याएँ मलयालममें की हैं। कण्णम्पुषा कृष्णवारियर द्वारा महाभारतकी गद्यमें व्याख्या आजकल प्रकाशित हो रही है। अहम्मद मौलवी तथा मुहम्मद मैतीनने 'कुरान' का तर्जुमा किया है। ए. जी. कृष्ण वारियर द्वारा 'बुद्ध धर्म' नामक एक ग्रन्थ लिखा गया है। अे. एम. चेयिनका 'क्रैस्तव-धर्म-नवनीतम्' ईसाई धर्मसे सम्बन्ध रखता है। नालपाट्टु नारायण मेनोनका 'आर्षज्ञानम्' तथा वी. के. नारायणन् यट्टतिरिका 'वेदार्थ विचारम्' इस शाखाके हिन्दू दर्शन सम्बन्धी दो मौलिक ग्रन्थ हैं। वल्लत्तोळका ऋग्वेद अनुवाद भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त गाँधी-दर्शनके अनेकानेक ग्रन्थ अनूदित ही नहीं, मौलिक रूपमें भी लिख गए हैं।

वैज्ञानिक ग्रन्थोंके अन्तर्गत साहित्य तथा समीक्षा-शास्त्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थोंको हम पहले-पहल ले लेंगे। पाश्चात्य और पौरस्त्य समीक्षा सिद्धान्तों और पद्धतियोंका सम्मेलन हम इस युगमें देख सकते हैं; पी. कृष्णन नायरकी 'काल जीवित-वृत्ति' और आट्टूरके 'रसिक रत्न' अलंकार, रस, ध्वनि आदिको

समझानेवाले दो मौलिक ग्रन्थ है। कृष्णन नायरने 'ध्वन्यालोक' के प्रथम अध्यायका अनुवाद किया है और 'कॉच्चि भाषा परिष्करण कमेटी' ने "साहित्य दर्पण" का। ए. सी. चाक्कोका 'पाणिनीय प्रद्योतम्' संस्कृतके 'अष्टाध्यायी' की मलयालम व्याख्या है। ए. डी. हरिशर्माकी 'नाटक प्रवेशिका' में संस्कृत नाटक सिद्धान्तोंकी चर्चा है। कृष्णपिल्लाने 'पाश्चात्य शास्त्र सिद्धान्त' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। पी. एम. शंकरन् नंपियारके 'साहित्य लोचन' मे पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों तथा संस्कृतके रस सिद्धान्तकी विवेचना है। आट्टूर कृष्णपिषारटीने संगीत कला पर 'संगीत चन्द्रिका' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। कुट्टि कृष्ण मारारकी 'मलयाल शैली' और 'वृत्त शिल्पम्' मे क्रमशः मलयालमके शुद्ध प्रयोगो और छन्दोकी चर्चा है। ए. बालकृष्ण पिल्ला का 'रूप मञ्जरी' नामक ग्रन्थ भी साहित्यके रूपोंकी चर्चा करनेवाली एक रचना है। एम. पी. पोलने उपन्यास तथा कहानीके सिद्धान्तों और प्रयोगोपर 'नोवल प्रस्थानम्' (उपन्यास धारा) आदि 'चॅरु कथा प्रस्थानम्' (कहानी धारा) नामक दो ग्रन्थ लिखे है। इन समीक्षा सिद्धान्तोके आधारपर कवियो और, साहित्यकारों एव रचनाओकी आलोचना करनेवाले कई प्रयोगात्मक लेख आदि ग्रन्थ भी इस कालमे निकले है। मलयालम की समालोचनाने जैसे संस्कृतकी समीक्षा पद्धतिको अपनाया है, वैसे ही पाश्चात्य पद्धतिको भी अपनाया है।

इसके अतिरिक्त गणित, विज्ञान, मानसशास्त्र, मुद्रा समस्या, अर्थशास्त्र, योजना आदि विषयोंपर भी मासिक पत्रिकाओमे लेख तथा स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित हुए है।

निबन्ध :

मलयालम निबन्धोंमें साहित्यिक और साहित्येतर दोनों तरहके निबन्ध पाये जाते है। पहलेमे साहित्य तथा समालोचनाके तत्वोकी विवेचना और प्राचीन-नवीन कवियो, लेखको और ग्रन्थकी आलोचना आदि आती है। जोसफ मुंडश्शेरि, कुट्टिकृष्ण मारार, गोविन्दन कुट्टि नायर, सुकुमार अषीक्कोड, ए. बालकृष्ण पिल्ला, कुट्टिप्पुषा कृष्ण पिल्ला, एम. आर. नायर, पी. के. नारायण पिल्ला, वटक्कुकूर राजराज वर्मा आदि प्रतिष्ठा-प्राप्त समालोचकोके समालोचना सम्बन्धी कई लेख भिन्न-भिन्न कवियो, धाराओं और ग्रन्थोपर निकले है। आर. ईश्वर पिल्लाके निबन्धोंमे, जो 'चिन्तासन्तानम्' मे संकलित है, साहित्येतर विषय आते है और विचारोके भारसे वे दबे हुए है। वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन् नायनार, पुत्तेषत्तुराम मेनोन, एम. आर. नायर, ई. वी. कृष्ण पिल्ला, ई. एम. कोवूर, पी. के राज राजवर्मा, विक्रमन् आदि लेखकोके लेख हास्य और नर्मसे भरे हुए है; अतः बुद्धिको भाररूप नही प्रतीत होते। अप्पन् तपुरान और उल्लूरके निबन्धोके

कई संग्रह पुस्तक रूपमें निकले हैं। इलकुळम् कुञ्ञन पिल्ला, शूरनाट्टु कुञ्ञन पिल्ला, एस. गुप्तन नायर, एन. कृष्ण पिल्ला, एम. लीलावती, के. सुरेन्दन्, के. एन. एषत्तच्छन, के. वासुदेवन मूसद, के. पी नारायण पिषारटी आदि कई एक लेखकोंके समालोचनात्मक निबन्ध मलयालमके साप्ताहिक-मासिक पत्रोंमें निकल चुके है और अब भी निकल रहे है।

नाटक :

नाट्य साहित्यके अन्तर्गत अब तकके नाटकोमे अधिकाश तो सस्कृत शैलीमे लिखे हुए थे और विषय भी आमतौरसे पौराणिक या ऐतिहासिक थे। इनमेसे कई तो संस्कृत नाटकोके अनुवाद थे और कुछ मौलिक। तमिष शैलीमे लिखे हुए सगीत-नाटक भी पाये जाते थे। लेकिन बीसवी सदीमे इस शाखाके रूप और भाव––दोनोमे एकदम परिवर्तन हो गया। इस युगमे पाश्चात्य नाटको तथा नाटक-शास्त्रके तत्वोंका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

नाटक-शाखाके बीसवी शतीके विकासकी निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं। देशके इतिहास तथा पुराणोकी कथाओके साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक' राजनैतिक आदि क्षत्रोसे भी कथानक चुने जाने लगे। कथोपकथनसे श्लोक और गीत निकाले गए और उनके स्थानपर सरल एव व्यावहारिक गद्यका ही प्रयोग होने लगा। आजकल प्रसंगके अनुसार स्वाभाविकताका निर्वाह करनेवाले गीतोके अतिरिक्त 'लोरी' के गीत भी रखे जाने लगे है। मलयालमके नाटककारोपर इब्सन, बर्नाड शा आदि आधुनिक युगके पाश्चात्य नाटककारोका प्रभाव काफी मात्रामे पाया जाता है। इनकी देखा-देखी समस्यामूलक नाटकोकी लिखनेकी प्रथा भी चली। श्री एन. कृष्ण पिल्ला, कैनिक्कर पद्मनाभ पिल्ला आदि लेखकोके नाटकोंमें कथाकी एकाग्रता, पात्रो और दृश्योकी संख्याकी कमी, भावकी गम्भीरता, चुस्त एव छोटे-छोटे वाक्योवाले कथोपकथन, स्वगत-भाषणका अभाव, समस्यात्मकता आदि नवीन नाटक-शैलीकी विशेषताएँ पाई जाती है।

ऐतिहासिक नाटकोंमे ई. वी. कृष्ण पिल्लाके राजाकेशवदास, इर विक्कट्टि पिल्ला और सीता लक्ष्मी (तिरुविताकूरके इतिहाससे सम्बद्ध) कैनिक्कर कुमार पिल्ला के 'कालवरियिलॆ कल्पपादपम्' (ईसा मसीहके जीवनसे सम्बद्ध) तथा 'वेलुत्तम्पि दळवा' (अँग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह करनेवाले तिरुविताकुर के एक दीवान), चेलनाट्टु अच्युत मेनोनका 'तच्चॉल्लि चन्तु' (मलाबारके एक वीर सैनिक तथा योद्धा), के. पद्मनाभन का 'कुञ्ञालि मरक्कार' (पुर्त्तुगीज लोगोके विरुद्ध सामूतिरिके पक्षमे युद्ध किए एक मुसलमान नाविक सेनानी), एन. वी. कृष्ण वारियरका 'वीर रविवर्म चक्रवर्ती' (केरलके एक प्राचीन राजा, जिन्होंने दक्षिणके तीनों तमिष राज्योंको जीतकर अपनेको चक्रवर्ती घोषित किया था।),

जगती एन. आचारीका इळयिटत्तु राणी, द्विजेन्द्रलालरायके ऐतिहासिक नाटकोंके अनुवाद आदि मुख्य है।

सामाजिक एव राजनैतिक आदि नाटकोंमें वी. टी. भट्टतिरिप्पाड्, एम. पी. भट्टतिरिप्पाड्, इडश्शरि गोविन्दन नायर, के. टी. मुहम्मद, तोप्पिल भासि, चॅरुकाट्टु, टी. एन. गोपिनाथन नायर, केशवदेव, के. दामोदरन आदि लेखकोके नाटक मुख्य है। तिक्कोडियन् भी इस कालके एक प्रमुख नाटककार है। ई. वी. कृष्ण पिल्ला, एन. पी. चॅल्लप्पन नायर, चेलनाट्टु अच्चुत मेनोन, एम. पी. शिवदास मेनोन आदि नाटककारोने कुछ अच्छे प्रहसन भी प्रस्तुत किए है।

आधुनिक नाटककारोंमे कई तो स्वय नट है और जो नट नही है, वे रङ्गमञ्चके प्रत्यक्ष अनुभव-प्राप्त व्यक्ति है। अतः नाटकोंकी रचनाके समय अभिनेयताकी ओर पूरा ध्यान रखा जाता है। नाटकोका अभिनय आज बहुत लोकप्रिय हो रहा है। आजकल स्कूलों, कालेजों, सार्वजनिक सस्थाओ, वाचनालयों आदिकी वार्षिक सभाओंमें नाटकका अभिनय एक अनिवार्य कार्यक्रम हो गया है। पेशेवर नाट्य-मण्डलियाँ आजकल काफी संख्यामे सङ्गठित हो रही है। उल्लूर, के. एम. पणिक्कर आदि इने-गिने लेखकोके कुछ पौराणिक नाटक ही उपलब्ध है। अनूदित नाटकोंमे अॅग्रेजी, फ्रान्सीसी, रूसी, हिन्दी, बगाली, मराठी आदि नाटक ही मुख्य है। आट्टकथाओं (कथनकळिमे अभिनयके लिए लिखा हुआ साहित्य) की रचना इस कालमे बहुत कम ही हुई है। एकांकियों, नाटकों और रेडियो नाटकोंकी सख्या भी आजकल बढ़ रही है।

कहानी :

कहानी साहित्यके अन्तर्गत बीसवीं सदीके प्रथम एक-दो दशक तक जो कहानियाँ लिखी गई थीं, उनमे आधुनिक कहानियोकी विशेषताएँ बहुत कम पाई जाती है। सामान्य जन-जीवनसे उनका कोई सम्बन्ध न था। मनोरञ्जन ही उनका उद्देश्य था और अद्‌भुत एव शृंगार रसका विस्तार ही उनका ढंग। अधिकांश तो छोटे उपन्याससे दीखते थे। अम्पाटि नारायण पॉतुवाल, सी. कुञ्ञिराम मेनोन, ऑटुविल् कुञ्ञुकृष्ण मेनोन, के. सुकुमारन आदि प्रारम्भिक कहानीकारोमेसे थे। इनकी कहानियोके बारेमे पी. के. परमेश्वरन नायर यों कहते है—"कुञ्ञुकृष्ण मेनोन तथा सुकुमारनकी कहानियोके विषय थे प्रेम और विवाह। कुञ्ञिराम मेनोनकी कथाओमे प्राचीन केरलके वीरोंके अपदान वर्णित है। अम्पाटि नारायण पॉतुवाल की कहानियोंमे अनुप्रास आदि शब्दाडम्बर अधिक पाये जाते है। सुकुमारनके पात्रोंका कथोपकथन यद्यपि हासमय तथा चमत्कारपूर्ण है, फिर भी अक्सर अश्लीलकी सीमातक पहुँच जाता है।"

आधुनिक ढंगकी कहानियोंका आरम्भ ई. वी. कृष्ण पिल्लाकी कहानियोंके 'केळी सौधम'के चार भागोमे प्रकाशित होनेसे लेकर है। इसके सम्बन्धमें एन कृष्ण पिल्ला इस प्रकार कहते है—"कुञ्ञु कृष्ण मेनोन द्वारा वर्णित कामासक्तिकी जगह स्वच्छन्द प्रेमकी प्रतिष्ठा करना, एतिह्यो और ऐतिहासिक घटनाओंको त्यागकर प्रतिपाद्यको सामाजिक रूप दे देना, एकमात्र विनोदको कहानियोंका लक्ष्य माननेकी प्रथाको थोड़ा-बहुत बदलकर उसकी जगह जीवनके तीव्र भाव-वाले वृत्तों द्वारा पाठकोके हृदयोंको हिला देना, ये ही कृष्ण पिल्ला द्वारा कहानीमे उद्घाटित सुधार है।" यह विकासकी प्रथम सीढ़ी है। दूसरी दिशामे बालकृष्ण पिल्लाके प्रभावसे स्वच्छन्दतावाद कहानियोसे बिलकुल तिरोहित हो गया और उसकी जगह यथार्थवादका उदय हुआ। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, आदि घटनाओ और समस्याओका कहानियोमे यथातथ्य विस्तार होने लगा। उसी तरह बाहरी जगतके सत्यके साथ-साथ भीतरी जगतके सत्यका भी वर्णन आधुनिक कहानियोमे पाया जाता है। तकषि शिवशंकरन पिल्ला, केशवदेव, एस. के. पोट्टेक्काट, मुहम्मद बशीर, ललिताम्बिका अन्तर्ज्जनम् (नंपूतिरि महिला), मूत्तिरिङङोट्टु भवत्रातन नपूतिरि, कारूर नीलकण्ठन पिल्ला, पी. सी. कुट्टिकृष्णन, एम. टी. वासुदेवन नायर, के सरस्वती अम्मा, आर. एस. कुरुप्पु, वेट्टूर रामन नायर, टी. पद्मनाभन, एन. पी. मुहम्मद, एन गोविन्दन कुट्टी, ई. एम. कोवूर, जी. विवेकानन्द आदि दर्जनो कहानीकार बीसवी शताब्दीमें हुए। इनमे कई तो स्वयं उपन्यासकार भी हैं। इनकी कहानियोमे सड़-पुराने मूल्यो एव व्यवस्थाओके उन्मूलन सम्बन्धी विचार और नए और स्वस्थ मूल्योंकी स्थापना एवं परिपाटियोके परिवर्तन सम्बन्धी विचार धारा प्रस्तुत की गई तथा एक सुन्दर भविष्यकी ओर सकेत पाया जाता है।

नर्म कथाएँ, शोकान्त कथाएँ, वातावरण प्रधान कथाएँ, स्वच्छन्दतावादी कथाएँ, आत्मचरितात्मक कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ, घटना-प्रधान कथाएँ, यथातथ्य शैलीकी कथाएँ, स्वप्नात्मक कथाएँ, चरित्र प्रधान कथाएँ, समाज विमर्शात्मक कथाएँ, मजदूर-जीवन सम्बन्धी कथाएँ, मध्यमवर्गीय जीवन सम्बन्धी कथाएँ, प्रेत कथाएँ, ऐतिह्य प्रधान कथाएँ, पत्रोके रूपमे लिखी गई कथाएँ उपलब्ध है। पारप्पुरम, नन्तनार और कोवलन्‌ने सैनिक जीवन सम्बन्धी रखनेवाली कई सरस कहानियाँ लिखी हैं। अन्य भाषाओंकी कथाएँ भी मलयालममे अनूदित हुई हैं। नाटकों और कहानियोके विकासके स्तरोंमे एक रूपता पाई जा सकती है।

उपन्यास :

नाटकों और कहानियोंके विकासकी जो विशेषता ऊपर अंकित है, वही उपन्यासोके विकासमें भी देखी जा सकती हैं। मलयालमका तीसरा उपन्यास ही यद्यपि सामाजिक है, फिर भी उसमें उच्च मध्यवर्गीय हिन्दू परिवारका

ही चित्रण है। निम्नवर्गीय किसानों, मजदूरोंकी और साहित्यकारोंकी दृष्टि इसी युगमे जाने लगी है। गाँधीवाद, समाजवाद, समष्टिवाद, मानवतावाद, आदिके प्रचारसे जो बीसवी शताब्दीमे ही भारतमे होने लगा था, साधारण जनताका महत्व बढ़ गया था और अन्य साहित्य शाखाओकी तरह उपन्यास शाखामे भी इनके जीवनका आन्तरिक एवं बाह्य जगत्के सघर्षो-समझौतोका, समस्याओ-समाधानोका चित्रण मिलने लगा। इस सुधारके नेता ए. बालकृष्ण पिल्ला ही थे। मलयालमके अधिकाश कहानीकार ही उपन्यासकार भी है। अतः अक्सर उनके उपन्यासोमे जीवनके अनेकानेक प्रसगों और हृदयके अनेकानेक भावोंका विस्तृत वर्णन पाया नही जाता। कई तो छोटे उपन्यास ही निकले। इस कालके उपन्यासोके विषय है—अभिप्रायकी स्वतन्त्रताको दबाकर मार डालनेवाली राष्ट्रीय दलोंकी निर्भय यान्त्रिकता, नेतृत्वकी सम्मान्यताके अन्तरका हास्यजनक खोखलापन, अकृत्रिम और सुन्दर स्नेह-बध, पवित्र सेवा आदि वन्दनीय पदवीके नामपर निरन्तर कष्टोको ढोते हुए और मरते हुए जीवन काटनेवाले कॉलेजके अध्यापककी दुरवस्था, अपने जोड़को चुन लेनेमे उत्सुक एक नारीकी असाधारण चित्रवृत्तियाँ, छियालीस वर्ष तकके अपने अविवाहित जीवनको वास्तविक जीवन न मानकर गृहस्थ जीवन स्वीकार करने वाली स्त्रीके अनुभव, खेती और मानव-जीवनका अभेद्य ऐक्य और समाज शरीरके कीट दंशोके दाग-रूप एक वर्ग की "दाहक शक्ति"। तकषिके 'पतित पकजम्' और 'प्रतिफलम्' मे अबतक की स्वीकृत नीति और सदाचारके नियमोको चुनौती दी गई है। उनकेही "रंटिङ्ङपि (दो सेर) और 'चैम्मीन' मे क्रमशः कुट्टनाडुके खेती-मजदूरो तथा समुद्रके किनारे रहनेवाले मछुए लोगोका जीवन चित्रित है। 'तलयोडु' (खोपड़ी) मे पुन्नप्र-वयलाट प्रदेशोमे कम्यूनिस्टो द्वारा सगठित सशस्त्र आन्दोलन पर आधारित घटनाएँ है और "तोट्टियुटॆ मकन्" (भगीका पुत्र) मे अपने परम्परागत पेशेको छोड़कर और भगियोके नेता बनकर आन्दोलन करनेवाले 'इशुक्कुमुत्तु' नामक एक भगी युवकका जीवन अकित है। 'केशवदेव' के 'ओटयिल्-निन्नु" (मोरीमेसे) मे पप्पु नामक एक रिक्शवालेकी कहानी है जो अपने रिक्शेके धक्केसे मोरीमे गिरी हुई एक लडकीको गोद लेता है तथा पढाता है और जिस ऊँचे महलमे वह अपना बादका जीवन बिताती है, उसके सामनेसे रिक्शा खीचते अनन्तकी ओर चला जाता है। उनके 'उलक्का' (मूसल) नामक उपन्यासमे क्रान्तिका आह्वान है तो 'नटी' मे धनलोलुप चालाक व्यक्तियों द्वारा कलाओके दूषित किये जानेका चित्रण है। मुहम्मद बशीरके 'बाल्य काल सखी' मे सुहा आदि मजीद नामक मुसलमान युवती और युवककी कहानी है जो एक दूसरेको प्यार करते है फिर भी विवाह करनेमे असमर्थ होकर अपना कष्टमय जीवन बिताते है। 'न्टुप्पाप्प-क्कॉरानॆण्टार्न्नु' (मेरे दादाके पास एक हाथी था) मे पीढ़ियों पहले खोई हुई अपने परिवारकी सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठाके बलपर और बातचीतमे उसकी याद

ले-देकर अपने वर्तमान दुःख और दैन्यको भूल जानेवाली एक मुसलमान बुढ़ियाकी कहानी है। लेकिन उनके ही 'शब्दडङ्ङळ' नामक उपन्यासमे निद्य और निकृष्ट एव अनैतिक घटनाओका नग्न चित्रण इतना रहता है कि उसे पढकर उत्कृष्ट भाव जाग्रत हो जाएँ, ऐसी सम्भावना नही है। एस. के. पॉट्टेक्काटुके उपन्यासोकी विशेषता सुन्दर एव रञ्जित शब्द चित्रण तथा सरस कथन शैली है। उनके 'मूटुपटम' मे राजनैतिक परिस्थितियोका चित्रण है तो 'नाटन प्रेमम्' मे एक शहरके धनी युवक द्वारा धोखा खाई हुई देहाती युवतीकी आहें वर्णित है। 'विषकन्यका' मे तिरुविताकूर प्रदेशसे मलाबारके जगलोमे आकर बसे हुए ईसाई लोगोकी प्रयत्न-शीलता आदि गुणो और मद्यपान जैसे दुर्गुणोका जीता-जागता चित्र खीचा गया है। एम. टी. वासुदेवन नायरके 'नालुकॅट्टिल्' में नायर समुदायके 'मरुमक्कत्तायम्' वाले दूषित मातृकदायक्रमके टूट जानेका वर्णन है। पी. सी. कुट्टिकृष्णनके उपन्यास नर्ममय एव काव्यात्मक कथोपकथनके लिए प्रसिद्ध है। इनके अलावा और भी कई उपन्यासकार है जिनके नाम ऊपर कहानीके सिलसिलेमे याद किए गए है।

अनूदित उपन्यासोकी सख्या भी बहुत बढ रही है। विक्टर ह्यूगो,टॉलस्टाय, डस्टोव्स्की, चेखोव, गोर्की, बालजक, फ्लाबर्ट, मोपासा, पर्लबक आदि पाश्चात्य उपन्यासकारो और हिन्दी बगाली आदिके बकिमचन्द्र, शरच्चन्द्र चटर्जी,ठाकुर,रमेशचन्द्र दत्त, प्रेमचन्द, यशपाल,मुल्कराज आनन्द,इलाचन्द जोशी,जैनेन्द्रकुमार, ख्वाजा अहम्मद अब्बास आदि लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यासकारोके सैकड़ो उपन्यास अब मलयालममे निकले है।

कविता :

इस कालमे प्रबन्ध काव्योके महाकाव्यकी धारा रुक-सी गई और खण्डकाव्य एवं मुक्तक रचनाओं-भावगीतोंकी धारा अधिक प्रवहमान हुई। अधिकांश कवि जनताके बीचमे ही रहने और उनके जीवनका चित्रण करने लगे। स्वच्छन्दतावादकी प्रतिक्रियाके रूप यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मानवतावाद आदिके तत्व स्वीकृत होने लगे तथा गाँधीवाद, समाजवाद, समष्टिवाद आदिकी दृष्टियोसे परिस्थितियोंकी आलोचना तथा विश्लेषण होने लगा। भारतके स्वतन्त्रता आन्दोलनसे भी कई कवियोंने अपनी प्रेरणा प्राप्त की। राष्ट्रीयताको जगानेके लिए यह आवश्यक हुआ कि भारतीयोंको अपनी प्राचीन महिमा, तत्कालीन अवनति और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादके शोभन दृश्योंका चित्र दिखाया जाए। अन्य भाषाओके कवियोंकी ही तरह मलयालमके कवियोंने भी इन सबके गीत गाए। अब संस्कृत बहुल शैलीकी जगह ठेठ शब्दो और छन्दोका प्रयोग अधिकाधिक होने लगा, क्योंकि यह जरूरी था कि जनताको समझानेके लिए उनकी ही भाषा बोली जाए। स्वच्छन्दतावादके उत्तराधिकारी वल्लतोळ, उल्लूर जैसे सक्रान्तिकालीन कवि भी अपने संकुचित दायरे तोड़ दिए अब प्रमुख कवियों तथा ग्रन्थोंकी चर्चा की जाती है।

वल्लत्तोळ नारायण मेनन (१८७९-१९५८):—इनकी शिक्षा-दीक्षा आदि परम्पराके अनुसार ही थी। ये सस्कृतके बड़े विद्वान थे और आधुनिक ढगके पठन-पाठनसे वञ्चित थे। वाल्मीकि रामायण, ऋग्वेद, कालिदासके 'शाकुन्तल' आदि सस्कृत काव्योको इन्होंने मलयालममे अनूदित किया है। वल्लतोळने 'चित्रयोग' नामक एक महाकाव्यकी सस्कृत शैलीमे रचना की। लेकिन पुराण-कथा-प्रसग सम्बन्धी रचनामें तथा 'साहित्य मजरी' के आठ भागोंमे सगृहीत छोटी कविताओमे इनकी कविता निखर उठी है। १९१० के आसपास आप बहरे हो गए थे और आपने अपनी उस दशाका वर्णन करते हुए 'बकिट् विलाप' नामक एक कविता लिखी है। 'बन्धन स्थानाय अनिरुद्धन' (बन्धनमे पड़ा अनिरुद्धन), 'मग्दलन मरियम', (मग्दलनकी मरियम), 'अच्छनुं मकळुम्' (पिता और पुत्री), शिष्यनुं मकनुं (शिष्य और पुत्र) आदि पुराण कथा-प्रसंग सम्बन्धी इनकी रचनाएँ है। उन्होंने पुराणोंमेसे ऐसे-ऐसे प्रसग ही चुनकर उनपर आपने रचना की है जो आधुनिक युगमे भी सरस हो सकते है। उनमे ऐसी-ऐसी उद्भावनाएँ भी कर लेते है जो वर्तमान युगके सर्वथा अनुकूल हों। 'बखानस्थाय अनिरुद्धन' मे बाणासुर द्वारा कारागृहमे रखे हुए कृष्णके पौत्र अनिरुद्धसे बाणासुरकी पुत्री उषाका मिलन वर्णित है। 'मग्दलन मरियम' मे बाइबिलकी एक कथा है जिसमें मग्दलना शहरकी 'मेरी' नामक वेश्या ईसा मसीहके अनुग्रहसे पवित्र हो जाती है। 'अच्छनुं मकलुम्' मे कश्यपके आश्रममे परित्यक्त होकर रहनेवाली शकुन्तला और विश्वमित्रका मिलन है। इसकी चरम सीमा तब होती है, जब परित्यागकी कथा सुनकर विश्वमित्र राजाको शाप देनेको तत्पर होते है और शकुन्तला कहती है—'जिसे पिताने पैदा होते ही छोड़ दिया, उसे पतिने विवाहित होनेके उपरान्त त्याग दिया—बस इतना ही।' विश्वमित्रकी मुद्रा आप ही आप बदल जाती है। 'शिष्यनुं मकनुम्' मे परशुराम तथा गणेशका युद्ध, अपने क्षत-विक्षत पुत्रको देखकर पार्वतीका क्रुद्ध होना और शिवपर व्यग्य कसना, शिवकी दुविधा, एवं राधा तथा कृष्ण द्वारा समझौता करा देना आदि घटनाएँ वर्णित हैं। 'कॉच्चुसीता' उनका एक और खण्डकाव्य है, जिसमे देवदासीके वशमे उत्पन्न एक बालिकाकी कहानी है जो अपने कुलकी वृत्ति छोड़कर सीताको आदर्श मानकर, मातामही द्वारा भेजे हुए विटसे बचनेके लिए आत्महत्या कर डालती है। 'साहित्य मञ्जरी' की कविताओके विषय विविध है। प्राचीन और नवीन, प्राकृतिक तथा मानव जीवनपरक, आन्तरिक जीवन सम्बन्धी तथा बाह्य जीवन सम्बन्धी, व्यक्ति प्रधान और वस्तु प्रधान सभी प्रकारकी रचनाएँ उसमें है। 'पुराणङ्ङळ' (पुराण), 'किलिक्कॉचल' (तोतेकी बोली—जिसमे सीताके बचपनका वर्णन है), 'अकर्मभूमियुटॅ पिचुकाल' (कर्मभूमिका शैशव-पाद-जिसमें कालिय दमनकी कथा है।) 'अपांटिल चॅल्लुन्न अक्रूरन्' (व्रजमे पहुँचने

वाले अक्रूर) आदिके विषय पुराणों और इतिहासोंसे सम्बन्ध रखते है। 'एण्टे गुरु-नाथन' (मेरे गुरु), खादी वसनङङल् कैक्कॉळ्विवरुम्' (सब खादीके वस्त्र स्वीकृत करे), 'नम्मुटॅ पताका' (हमारा झण्डा), 'चक्रगाथा' (चक्रकी गाथा–चर्खेका गान), आदि कविताओमे गाँधी-आन्दोलनका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।' मातृभूमियोरु' (मातृभूमिसे) मे भारतकी, प्राचीन महिमा गाई गई है तो 'मातृवन्दनम्' मे कवि केरळमाताकी वन्दना करते है। इधर बादको उन्होंने चीनके पर्यटनके बाद नये ढंगकी लेनिन और स्टैलिनपर लिखी कुछ कविताएँ है। लेकिन इनमे वल्लत्तोळकी आतमा प्रकट नहीं हुई है। दीन दुखी लोगोंकी ओर जो हार्दिक सहानुभूति पहलेकी 'माप्पु' (क्षमा), 'तोणियात्रा' (नावकी यात्रा) आदिमें होती है, वह बादकी इन नई कविताओमे नहीं। समष्टिवादके ऊँचे स्तरोके नेताओंकी खुशामद करनेसे ही कोई यथार्थवादी कवि नही बनता। भारतीयता की तरफ भक्ति ही उनकी मौलिक भावना है। इसे छोड़कर इससे एकदम भिन्न सिद्धान्तों तथा जीवन-प्रणालियोका हृदयस्पर्शी समर्थन उनके लिए असम्भव है। वल्लत्तोळमे रूढ़िवाद, स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद, मानवतावाद––आदि अनेकानेक वादोके पुट पाये जा सकते है। पी. के. परमेश्वर नायरकी रायमें वल्लत्तोळकी निम्नलिखित विशेषताएँ है:––

१–ललित, मधुर, एव प्रसादगुणयुक्त भाषा।

२–पुराणोंकी घटनाओंको वर्तमानकालीन दृष्टिसे देख लेना।

३–प्राचीन कलाओंकी ही तरह मलयालमके छन्दोका पुनरुज्जीवन।

४–देश-प्रेम तथा देशाभिमान।

५–प्रकृतिका सुन्दर चित्रण–आलम्बनके रूपमे कम और उद्दीपनके रूपमें अधिक।

वल्लत्तोळ-शैलीके कवियोमे मुख्य है कुंट्टिप्पुरत्तु केशवन नायर, वॅण्णिकुळम् गोपाल कुरुप, वल्लत्तोळ गोपाल मेनन, नालप्पाट्टु नारायण मेनन इत्यादि। इनकी कविताएँ प्रसादगुणसे युक्त है। इनका शब्द-चयन ऐसा है कि थोड़ी भी नीरसता उसमें नही आने पाई है। कृष्णपिल्लाकी रायमे 'तल तक स्पष्ट दिखाई देनेवाली, कम-गहरी, स्वच्छ जलवाली सरोवर जैसी है इन कवियोंकी रचनाएँ। नालप्पाट्टु नारायण मेनन उनमेसे भावकी बातमें पृथक् अस्तित्व रखते है। उन्होने लिखा तो कम है, पर 'कण्णुनीटत्तुल्लि' (आँसूके कण) 'पुलकांकुर', 'चक्रवाल', आदि काविताएँ जीवन तथा जगत-से बँधी तत्वोंसे भरी पड़ी हैं। पहला एक विलाप-काव्य है जिसमे कवि अपनी पत्नीकी मृत्युपर करुण विलाप करते हुए और अपने रुदनको दर्शनसे नियन्त्रित रखनेका विफल प्रयत्न करते हुए दिखाई देता है।

उल्लूर परमेश्वर अय्यर (१८७७–१९४९):––उल्लूर सरकारके एक, उच्च कर्मचारी थे। अपने व्यस्त अफसरी जीवनमे भी कवि, अन्वेषी, निबन्धकार

साहित्य परिषदके प्रमुख प्रवर्त्तक आदि होकर उन्होंने भाषा तथा साहित्यकी सेवा करनेका बहुत सा अवसर निकाल लिया। मलयालमके कई प्राचीन ग्रन्थोंका अनुसन्धान करके उन्होने आलोचना-सहित उनका प्रकाशन किया। भाषा तथा साहित्यके इतिहासपर उन्होने एक खोजपूर्ण वृहत् ग्रन्थ लिखा है। साहित्य तथा साहित्यिक ग्रन्थोके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखे हुए कई निबन्ध भी उपलब्ध है। सरकारी कर्मचारी होनेसे उनमे खुली राष्ट्रीयताके दर्शन नहीं होते; फिर भी 'चित्रशाला' 'अन्नुं इन्नुं' आदि उनकी रचनाओमें भारतके उज्ज्वल अतीतका वर्णन है। मिस मेयो नामक अमेरिकन वनिताने भारतीय नारियोका 'पुरुषका सन्तानोत्पादन यन्त्र मात्र' कहकर अपमान किया तब उल्लूरका हृदय उत्तेजित हो गया और उन्होंने 'चित्रशाला' लिखकर सीता, रुक्मिणी आदि आदर्श नारियो द्वारा भारतमे चलाई हुई उज्ज्वल नारी-परम्पराके कई चित्र प्रदर्शित किए। 'अन्नुं इन्नुं' मे महाभावके वीर पुरुषो तथा रमणियों—विशेषकर भगवान कृष्णका वर्णन करके ऐसा एक युग भारतमे फिर आ जाए, यह आशा प्रगट की जाती है।

'पिगला', 'कर्णभूषण', 'भक्तिदीपिका' आदि उनकी पुराण-सम्बन्धी रचनाएँ है। 'पिगला' मे उसी नामकी एक वेश्याका विरक्ति द्वारा उद्धार होनेकी कथा है। 'कर्णभूषण' मे इन्द्रको महादानी कर्णद्वारा कवच-कुण्डल दिये जानेका वृत्त वर्णित है। शकराचार्यका शिष्य सनन्द कठिन तपस्या करनेपर भी जिस नृसिहके प्रत्यक्ष दर्शन कर सकनेमे असफल हुआ, उसीके दर्शन चात्तन नामक एक सच्चा भक्त किस तरह बिना प्रयासके कर लेता है, इसका वर्णन 'भक्तिदीपिका' मे है। 'उमाकेरळम्' नामक उनका ऐतिहासिक महाकाव्य, जिसका तिरुवितांकूरके इतिहास से सम्बन्ध है, परवर्ती संस्कृत शैलीमे लिखा हुआ, मलयालमका सर्वोत्तम महाकाव्य कहलाने योग्य है।

उनके काव्य-सग्रहोमे मुख्य है :—'अरुणोदय', 'तारहारम्', 'किरणावली', 'रत्नमाला', 'मणिमंजूषा', 'हृदयकौमुदी', 'तरंगिणी', 'कल्पशाखी', 'अमृत-धाय', 'दीपावली', 'तप्तहृदयम्' आदि-आदि। इनका विषय-क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

उल्लूर पहले रूढ़िवादी थे और बादको स्वच्छन्दतावादी बन गए। 'द्वितीयाक्षर प्रास समर्थन', 'उमाकेरळ' महाकाव्य आदि उनके क्लासिसिस्ट होनेका प्रमाण देते है।

एन. कृष्ण पिल्लाने उल्लूरके सम्बन्धमे अपने भाव इस तरह व्यक्त किए है :—

"उल्लूरकी प्रतिभा महाकाव्यकारकी थी। सबको बृहत् रूपमें देखना ही उनकी प्रकृति थी। उनकी रचानओंमे सक्षेपकी जगह विस्तार, उल्लेखोंका आधिक्य एव कल्पनाकी ऊँची-ऊँची उड़ानें पाई जाती है। श्लेषो-यमकोंका चमत्कार, अलंकारोंके सभी अंगोंका शास्त्र-सम्मत निवेश, फालतू तत्व कथन, आदि अन्य विशेषताएँ है। इन सबके कारण उनकी कविता भावकी एकाग्रताको अक्सर खो बैठती है। आन्तरिक

एवं बाहरी विशुद्धि तथा प्रयत्न उल्लूरके जीवन-सिद्धान्त थे। 'भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिके साधनके रूपमे जीवनको बदल देना--यही उनके सन्देशका सार है। इस सन्देशके प्रचारके योग्य पौराणिक और आधुनिक विषयोंको उन्होंने बार-बार स्वीकार किया है।"--

पल्लत्तु रामन (१८९२-१९५०) की रचनाओंमें वीर रस और समयोत्सुकता दिखाई देती है। प्रकृतिसे शुरू होकर उनकी काव्य-नदी समूहके बीच आ पहुँची है।

सरदार के. एम. पणिक्करकी काव्य-प्रतिभा बहुमुखी है। 'अपक्वफलम्' में उनके विद्यार्थी-जीवनमे लिखी हुई कविताएं है। उनकी कुछ कविताएँ दार्शनिक हैं तो कुछ प्रेम और इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली। 'भूप सन्देश' नामक सन्देश-काव्य, 'हैदर नायक' नामक चम्पू तथा 'रसिकरसायनम्' नामक उमर खैय्यामकी रुबाइयात तथा 'कुमार सम्भवम्' के अनुवाद भी उन्होंने प्रस्तुत किए है।

पी. कुञ्ञिरामन नायरकी कविताओंमे शुद्ध केरळीयता के आह्वान के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृतिके अच्छे-बुरे सभी अगोके प्रति कठोर शत्रुता दिखाई देती है। प्रगतिवादी सिद्धान्तोके वे एकदम खिलाफ हैं। प्रेम और मानवतावाद तथा आस्तिकता उनके और भाव होते है। अपनी मस्तीमे गानेवाली इनकी कविताओंमे छितरी हुई तथा दूर-दूर तक जानेवाली शिथिल, अव्यवस्थित कल्पनाएँ, एकाग्रताकी न्यूनता आदि दोष भी अक्सर पाये जाते हैं।

के. के. राजा चिन्तनपरक, ह्रस्व मधुर भावगीतोंके लिखनेमें दक्ष है। जिनकी पृष्ठभूमि गहरी आस्तिकता और दार्शनिकता है। उनकी 'बाष्पाञ्जलि' अपने एक मित्रकी मृत्युपर लिखा हुआ सुन्दर भाव-गम्भीर विलाप-काव्य है।

वी. उण्णिकृष्णन नायर, वी. वी. के. नपियार, एन. गोपाल पिल्ला, बोधेश्वरन् आदि भी आधुनिक युगकी वयस्क पीढ़ीके कवि है, जिन्होंने अपने लिए स्थान और सम्मान प्राप्त किया है। स्त्री-कवयित्रियोंमें मेरी जोण तोट्टम, कूत्താट्टुकुळम् मेरी जोण, कटत्तनाट्टु माधवियम्मा, सुगतकुमारी, नळिनकुमारी आदि मुख्य है। जी. शंकर कुरुपकी रचनाओंमे इस वयस्क पीढ़ी तथा आगेकी प्रगतिवादी परम्परा--दोनोंकी विशेषताएँ पाई जाती है। वे नए-नए वादोंके आविर्भाव तथा प्रचार-प्रसार के साथ-साथ अपनेको बदलनेमे सफल हुए है। अतः नई-पुरानी सभी पीढ़ियोके लिए वे आदरणीय हो चुके हैं।

इटप्पिल्लि राघवन पिल्ला (१९०९-१९३६) तथा चङ्ङम्पुषा कृष्णपिल्ला (१९१४-१९४८) दोनों प्रेमानुभवोंके कवि हैं। दोनोंके जीवन दुख-दैन्योंमे बीते, यद्यपि उनमेंसे कई स्वकृत थे। पहलेने अपनी प्रेमिका युवतीसे विवाह न कर सकनेके कारण आत्महत्या कर ली। इसी घटनापर चङ्ङम्पुषाने 'रमणन्' नामक एक ग्वाल-काव्य गीति-नाटक शैलीमें लिखा है। दूसरेने कई सालोंकी राजयक्ष्मा

और सांसारिक उपेक्षासे पीड़ित होकर अन्तिम साँस ली। चङ्ङम्पुषाकी कुछ रचनाओंमे क्रान्तिवाद दिखाई देता है, लेकिन वह उदयकालीन कुहरेके जैसा क्षणिक था ; मौलिक रूपमें वे क्रान्तिके कवि नही थे। दोनोंकी रचनाओंमें निराशा, पश्चात्ताप, विषाद, ग्लानि, अमर्ष, द्वेष, विरक्ति, पराभव तथा आत्माकी वेदना आदि पाई जा सकती है। इनके द्वारा वर्णित प्रेम लौकिक है। वह कोरी आध्यात्मिकता और शारीरिक आकर्षण—दोनोसे अपनेको बचाए हुए आगे बढ़ता है।

इसके बाद मलयालम कविताको नया मोड़ मिला। विज्ञानके अपार विकासके फलस्वरूप कवियोंका दृष्टिकोण ही नही, उनकी अन्तःवस्तु (Mental Content) भी वैज्ञानिक हो गई। यूरोपके दो महायुद्धों और एशिया-अफ्रीकाके स्वतन्त्रता आन्दोलनोंने मलयालमके कवियोंको भी प्रभावित किया। यहाँके कवि तथा लेखक, जाने-अनजाने, साहित्यके क्षेत्रमे नए आए हुए वादोके चक्करमें पड़ने लगे। इस नई परम्पराके कवि है, वैलोप्पिल्लि श्रीधर मेनन, पी.भास्करन्, एन.वी. कृष्ण वारियर, एम. पी. अप्पन, पाला नारायण नायर, इरश्शेरि गोविन्दन् नायर, वयलार राम वर्मा, ओ. एन. वी. कुरुप, अक्कित्तत्तु अच्युतन नम्पूतिरि, ऑलप्पमण्ण नम्पूतिरि सहोदर, कॅटामगलम् पप्पकुट्टी, सी. जी. मण्णुम्मूटु आदि-आदि। नालप्पाट्टु बालामणियम्माने अपने लिए एक स्वतन्त्र मार्ग तैयार किया है। वादोंके कोलाहलमे वे नही पड़ती। माता और कुटुम्बिनीवाले दोनो रूपोंमे नारीकी महत्ता, और शिशुत्वकी निर्मलता ही उनकी रचनाओंका विषय है। 'अम्मा', 'कुटुम्बिनी', 'स्त्री-हृदय', 'कूप्पुकै' आदि ऐसी ही रचनाएँ है। बादकी कृतियोंमे विचारके अशकी वृद्धि और प्रतिरूपात्मकता एवं रहस्यात्मकता का पुट दिखाई देने लगा है। 'लोकान्तर ङङळिल्' (लोकान्तरोमे) अपने मामा नालप्पाटु नारायण मेननकी मृत्युपर बालामणियम्मा द्वारा लिखा हुआ एक विलाप-काव्य है, जो दर्शनके भारसे झुका हुआ-सा है। एन. वी. कृष्ण वारियरने भावगीतोंकी उच्छृंखलताकी प्रतिक्रियाके रूपमें लम्बे-लम्बे आख्यान-काव्य लिखे। नए-नए अप्रस्तुतो और अँग्रेजी शब्दोके प्रयोग करनेमे वे बिलकुल नही हिचकते। पाला नारायणन् नायरकी कविता वस्तु-प्रधान अधिक है। 'केरळ वळरुन्नु' (केरल बढता है) नामक उनके आख्यान-काव्यमे केरलकी प्राकृतिक शोभा, इतिहास, सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थितियों आदिका थोड़ा बहुत उज्ज्वल चित्रण रहता है, लेकिन वर्तमान समस्याओंकी ओर उनकी दृष्टि नही गई है। वैलोप्पिलिने बहुत अधिक नही लिखा है, लेकिन जो कुछ लिखा, वह गणनीय है। उनका जीवन-दर्शन प्रसादमय है और वे ऐतिहासिक एव वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे अनुग्रहीत है। मानवताका बोध ही उनका सन्देश है। वे बहुत वाचाल नही और संक्षेपकरण ही उनकी शैलीकी विशेषता है। इरश्शेरि गोविन्दन नायरकी रचनाओंकी पृष्ठभूमि आर्थिक एवं सामाजिक है। किसान, मजदूर आदि निम्न वर्गीयोंका जीवन ही उनकी कविताओमे प्रतिबिम्बित है।

अक्कित्तत्तु अच्युतन नंपूतिरि और ऑलप्पमण्ण सुब्रह्मण्यन तथा अनुजन प्रतिष्ठा-प्राप्त नम्पूतिरि परिवारोमे ही पैदा हुए और उसी वातावरणमें पले, फिर भी अपनी कविताओंको सार्वजनिक एव प्रगतिवादी बनानेके प्रयत्नमे कुछ सीमा तक वे सफल हुए है। लेकिन कहा नही जा सकता कि वे अपने परम्परागत सस्कारसे पूर्णरूपेण मुक्त हो पाए है। पी. भास्करनकी प्रारम्भकालीन रचनाओमे एक रङ्ग-रञ्जित सुन्दर समाजका आवेशमय चित्र और उसका आह्वान रहता है तो बादकी रचना-ओंमे इन सुन्दर स्वप्नोंका भङ्ग आदि आवेशका शमन पाया जाता है और उससे उत्पन्न शोककी हलकी छाया इधर-उधर बिखरी पडी है। मानवताका स्नेह ही उनके काव्योंकी प्रेरणा है। सुगतकुमारीकी कविताओंकी भूमिका दार्शनिक एव चिन्तन-परक है। वयलार रामवर्मा, ओ. एन. वी. कुरुप, केटामङ्गलम् पप्पुकुट्टि, सी. जे. मण्णुमूटु आदि कवियोंमे क्रान्तिकी भावना अधिक पाई जाती है।

अब पद्य शाखाके अनूदित ग्रन्थोका दिग्दर्शन ही रह जाता है। 'शाकुन्तल'के दर्जनों अनुवाद इस कालमे निकले है। तमिलके 'चिलप्पतिकारम्', 'पतिट्टुप्पत्तु', 'तिरुक्कुरल' आदि काव्य भी अनूदित हो चुके है। उमर खय्यामकी रुबाइयात के चार-पाँच अनुवाद प्रकाशित हुए है। वे है शकर कुरुपकी 'विलासलहरी', के. एम. पणिक्करके 'रसिक रसायनम्', एम. पी. अप्पनका 'जीवितोत्सवम्', 'शास्तमगलम्' रामकृष्ण पिल्लाकी 'आनन्दगीता' और चङ्ङम्पुषाका 'मदिरो-त्सवम्'। चङ्ङम्पुषाने सोलमनके गीतों (Songs of Solomen) और गीत-गोविन्दका अनुवाद भी किया है। जी. शकर कुरुपने 'मेघदूतम्' और ठाकुरकी 'गीताञ्जलि' तथा अन्य कई छोटी-मोटी रचनाओंका भाषान्तर किया है। अँग्रेजीके 'Paradise Lost', 'Sohrab and Rustum', 'Mort De Arthur' आदिके अनुवाद भी उपलब्ध है। पणिक्करने कुछ चीनी कविताओंको 'इपाप्पक्षिकळ' (पथियोके जोड़े) नामसे अनूदित किया है। हिन्दीकी कविताओंका मलयालममें अनुवाद बहुत कम निकला है। हालमें इस ओर कुछ प्रयत्न तो हो रहा है। इस ग्रन्थके लेखकने 'ऑसू', 'पञ्चवटी' और 'कामायनी' का अनुवाद कर पत्रिकाओमे प्रकाशित किया है और अब 'रामचरितमानस' का भाषान्तर कर रहे हैं। 'बिहारी-सतसई', कबीर, पन्त आदि कवियोके कुछ पद्य भी अनूदित हो रहे है।

इस प्रकार मलयालम साहित्य सात-आठ शताब्दियोंकी अपनी लम्बी यात्राको समाप्त कर बीसवी सदीके उत्तरार्द्धमे आ पहुँचा है। भविष्यमे भी वह और अधिक प्रगति करेगा, इसमें कोई सन्देह नही है।

● ● ●

जी. शंकर कुरुप

[कवि-परिचय]

जी. शंकर कुरुप

• • •

महाकवि जी. शंकर कुरुपका जन्म १९०१ ई. मे तिरुविताकुरके 'नायत्तोड्' नामक गाँवके एक दरिद्र परिवारमे हुआ। पिताका नाम शकर वारियर और माताका लक्ष्मी कुट्टी था। प्रथाके अनुसार तीसरे बरसकी आयुमें ही विद्यारम्भ संस्कार-कर्म सम्पन्न हुआ और उनकी शिक्षा-दीक्षा शुरू हुई। आपके मामा ही आपके प्रथम गुरु थे। पुराने ढगके अनुसार संस्कृतका अध्ययन आरम्भ हुआ और तीन-चार वर्षके अन्दर 'अमरकोश', 'श्रीरामोदन्त' तथा 'रघुवश' के कुछ श्लोक पढ़े। इसी समय आप पास ही सरकार द्वारा खोले हुए एक मलयालम स्कूलमे भर्ती हुए और चौथे दर्जे तक वहाँ पढ़कर परीक्षामे उत्तीर्ण हुए। आगे पढ़नेकी तीव्र इच्छा थी; पिता तब तक मर चुके थे और इसलिए उनके पालनका भार मामाके कन्धेपर ही पड़ा था। उन्होंने कुरुपको 'पेरुम्पावूर' के मिडिल स्कूलमे दाखिल किया। यहाँ सातवें दर्जे तक की उनकी पढ़ाई जारी रही। इसी समय सरकारने मलयालममे हायर परीक्षा शुरू की थी। कुरुपने 'मुवाट्टुपुषा' स्कूलमे दो साल पढ़कर यह परीक्षा दी और पास हो गए। बादको वे 'पण्डित' परीक्षा मे भी उत्तीर्ण हुए। नौ सालकी उम्रसे चौथी कक्षामे पढ़ते समय ही, आपने कविता करना शुरू कर दिया था। एक बार सिरमें चक्कर आनेसे आप बेहोश होकर गिर पड़े थे और एक साथी द्वारा घर पहुँचाये गए थे। इस घटना पर अपने उस साथीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते

हुए, उन्होंने कुछ संस्कृत छन्द लिखे थे। फिर समुद्र-मन्थनकी कथापर भी आपने दस-पन्द्रह श्लोक लिखे। मामा द्वारा घरपर संगृहीत पुस्तकोंको आपने बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ा। मुवाट्टुपुषा स्कूलके दो अध्यापक थे श्री एम. एन. नायर और श्री आर. एस. शर्मा। ये दोनों कुरुपकी कवि प्रतिभाको पुष्ट करते और उन्हें प्रोत्साहन देते रहे। स्कूलकी पढाईके साथ-साथ अवकाशके समयमें कुरुप, शर्माजीके पास 'कुवलयानन्द' तथा 'रघुवंश' भी पढ़ते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी रचनाओंके अनुवादमे कुरुपको इन्ही शर्माजीसे बहुत सहायता मिली थी।

१९२१ ई. मे. कॉच्चि द्वारा सञ्चालित तिरुविल्वामला हाइस्कूलके मलयालम अध्यापकके पद पर आपकी नियुक्ति हुई और आप चार साल तक वहीं रहे। यह समय कुरुपके जीवनमे बहुत महत्वपूर्ण था। उन्होंने अपने निजी प्रयत्न तथा सहाध्यापकोंकी सहायता एवं सहयोगसे अंग्रेजी सीख ली और उसके विपुल साहित्यके आस्वादनके योग्य जानकारी प्राप्त की। तिरुविल्वामलाकी प्रकृति अत्यन्त रमणीय एव शस्य-श्यामल है। चारों ओर हर कहीं धानके घने और विस्तृत क्षेत्र, पेड़-पौधोंसे भरे हुए मैदान एव पहाड़-पहाड़ियाँ दिखाई देती है। यहीसे होकर भारत नदी भी बहती है। भगवान रामचन्द्रका एक प्रसिद्ध एव प्राचीन मन्दिर भी यहाँ है। प्रकृतिकी ऐसी सुन्दर छटाका प्रभाव कुरुपके भावुक हृदयपर पड़े और उसमें बसे हुए कविको जगाये बिना कैसे रह सकता है? अपनी कई कविताएँ उन्होंने यही रहते समय की थी।

तिरुविल्वामला से बदलकर वे चालक्कुटीके हाइस्कूलमें आए। तभी विद्वान' परीक्षाके दोनों खण्डोको एक साथ लिखकर वे पहले दर्जेमे पास हुए।

कुरुप फिर स्थानान्तरित होकर १९२७ मे तृश्शिव पेरूरके पास, रामवर्मपुरम् के ट्रेनिङ्ग स्कूलमे पहुँच गए। यहाँ वे दस साल तक रहे और बादको 'एरणाकुलम्' के 'महाराजा कॉलेज' के प्राध्यापक नियुक्त हुए। बादको वे यहाँके मलयालम प्रोफेसर भी हुए और १९५६ तक इसी पदपर कार्य कर, पचपन साल की उम्रमे सेवा-निवृत्त हुए। कॉलेजके बीस सालके जीवनने कुरुपके मानसिक क्षितिजको और विस्तृत कर दिया। पढने-पढ़ानेका जो सुयोग कॉलेजोंमे मिलता है, वह स्कूलोंमें कहाँ प्राप्य है। पढ़ानेका उनका ढङ्ग ही निराला था। उनके शिष्योंमे शायद ही ऐसा कोई हो जो उनके शिष्य होनेपर अभिमान न करता हो। काव्यके हृदय तक ले जाकर उसके सौन्दर्योका आस्वादन करनेकी शक्ति एव योग्यता शिष्योमे पैदाकर देना ही उन्होंने अपने अध्यापनका लक्ष्य समझा था। इसमे वे सफल भी हुए। वे स्वयं कवि थे और सरस एवं भावुक भी थे।

पैंतीस साल के अपने अध्यापक-जीवनमे आप कई बार परीक्षक, और शिक्षा समितियों एवं पाठ्य-पुस्तक समितियोंके सदस्य भी रह चुके है। १९५६ की अपनी सेवानिवृत्तिके बाद, वे तिरुवनंतपुरम् की आकाशवाणी मे कुछ समय के लिए

'प्रोड्यूसर' नियुक्त हुए। फिर उस पदसे इस्तीफा देकर वे सलाहकारके रूपमें अपनी सेवाएँ देते रहे।

उल्लूर परमेश्वर अय्यरके निधनके बाद 'समस्त केरल साहित्य परिषद' के सञ्चालनका क्रियात्मक उत्तरदायित्व आपको अपने ही ऊपर लेना पड़ा। आप उस संस्थाके प्रधान प्रवर्तकोंमे एक रहे और कई साल तक उसके निर्वाहक-मण्डलके अध्यक्ष तथा मासिक-पत्रिकाके सम्पादककी हैसियतसे भी भाषा तथा साहित्यकी सेवा करते रहे। बादको परिषद जब आन्तरिक फूटका केन्द्र और विपक्ष दलोंका अखाड़ा बना, तब कुरुपने उससे अपना सारा नाता तोड़ दिया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय साहित्य अकादमियोंके सदस्य तथा मलयालम विभागके संयोजकके तौरपर भी आजतक काम कर रहे है। आकाशवाणी द्वारा दिल्लीमे सगठित कवि-सम्मेलनोमे भी उन्होंने दो-तीन बार भाग लिया है।

अपने पारिवारिक जीवनमे भी कुरुप बड़े भाग्यवान है। उनकी पत्नी श्रीमती सुभद्रा अम्मा अपने पतिके व्यस्त जीवनको शान्ति तथा सुखसे अलकृत करनेका सतत प्रयत्न करती रहती है। कुरुपके दो सन्ताने--एक पुत्र और एक पुत्री है।

हाल ही मे जब कुरुपकी साठवी वर्षगाँठ मनाई गई, तब उस समारोहके, सिलसिलेमे उनकी कविताओंका एक संग्रह 'पाथेयम्' नामसे और उनकी कविताओ की समालोचनाओंका एक संग्रह 'जीयुम् साहित्यवुम्' (जी तथा साहित्य) नामसे सम्पादित होकर उपहारके रूपमे उन्हें समर्पित किया गया। कुरुपकी एक कमजोरी यह है कि वे अपने विपक्षियोंसे भी 'ना' नही कर सकते। वे किसी वादमे पड़ना नही चाहते। दलबन्दीके संकुचित दायरेमे उनकी आत्मा पूरी उन्मुक्तताका अनुभव नही करती।

जब कुरुप दस-ग्यारह वर्षके थे, तभी वे एक बार मलयालमके प्रसिद्ध महाकवि कुञ्ञुकुट्टन तम्पुरान एक बार नायत्तोडके हरिहर स्वामीके मन्दिरमे पधारे थे। 'मेरी कविता' नामक लेखमे कुरुप कहते है कि तम्पुरानके दर्शनके परिणामस्वरूप मेरे मनमे ऐसे ही महाकवि बननेकी अभिलाषा पैदा हो गई। यह अभिलाषा कालान्तरमें सफलीभूत भी हुई। कुरुपने कोई खण्ड-काव्य या महाकाव्य नही लिखा है। अधिकांश तो मुक्तक गीति-काव्य है। अब तक उनके गीति-काव्योके कई संग्रह निकल चुके है, वे इस प्रकार है :--

१. साहित्य कौतुकम्के चार भाग (क्रमश. १९२३, १९२५, १९२७ और १९३०में)
२. सूर्यकान्ति--१९३३
३. नवातिथि--१९३४
४. पूजापुष्प--१९४४
५. चॅकत्तिरुकळ (लाल किरणे)--१९४५
६. निमिषम्--१९४५

७. मुत्तुकळ्——१९४६
८. वनगायकन्——१९४७
९. इतळुकळ्——१९४८
१०. पथिकन्टे पाट्टु (पथिकका गान)——१९५१
११. अन्तर्दाहम्——१९५३
१२. वॅळ्ळिल् परवकळ——१९५५
१३. विश्वदर्शनम्——१९६०
१४. इळंचुंट्टुकळ् (छोटे अधर) और ओलप्पीलि——बाल साहित्य

इसके अलावा अप्रकाशित अन्य रचनाएँ भी है।

कुरुप द्वारा किए हुए अनुवादोमे 'मेघदूतम्', 'मध्यम व्यायोगम्', उमर खय्यामकी रुबाइयात' और ठाकुर की 'गीताञ्जलि' तथा अन्य कई गीत प्रधान है। 'मालविकाग्निमित्रम्' के दो-तीन अङ्क तथा 'शाकुन्तल' के कई एक श्लोक भी उन्होंने अनूदित किए है।

उनकी कविताओंके विषय विविध है। कुरुपकी प्रारम्भिक कविताके विषय प्रकृति, प्रेम और देशाभिमान रहे है। प्रकृतिका आलम्बन और उद्दीपन—दोनों रूपोंमे वर्णन पाया जा सकता है। प्रकृतिका मानवीकरण और मानवीकृत वस्तुओंसे तादात्म्य स्थापित करके तथा उन्हें अपना साथी और मित्र बनाकर अपने सुख-दुःखो और आशा-निराशाओंकी कथाका विवरण उनको दे देना, उन वस्तुओंकी जीभ और वाणी देकर उनसे अपनी-अपनी कथाका विस्तार कराना, उन्ही वस्तुओके जरिए उनके पीछे सर्वव्यापी होकर रहनेवाली परम शक्ति और ज्योतिका अनुभव करना तथा उसीका यशोगान गाना—ये भिन्न-भिन्न शैलियाँ उनके प्रकृति वर्णनमे दिखाई देती है। कुरुपके प्रेमका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। मानवोंके साथ-साथ पशु-पक्षियों तकके सयोग-वियोगका उन्होंने वर्णन किया है। इसी तरह उनकी रचनाओमे लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनो प्रकारके प्रेमोंका निरूपण किया गया है।

आपकी कई कविताएँ देशभक्तिसे ओतप्रोत है। केरल तथा भारतके और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीके यशोगानके साथ-साथ चीन, अबीसीनिया, जावा आदि भारतेतर देशोंकी परिस्थितियोंका वर्णन भी उन्होंने किया है।

मानव-जीवनकी निराशा और पराजयके साथ-साथ उसकी आशा और पुरुषार्थके गीत भी उन्होंने मुक्त कण्ठसे गाये है। कुरुपके ऊपरके उद्धृत कथनको थोड़ा बदलकर हम यो कह सकते है कि आरम्भसे अब तक प्रकृति, मनुष्य और अध्यात्म ही उनकी कविताओके विषय है।

कविताओंके अलावा कुरुपने अन्य प्रकारकी रचनाएँ भी की है। 'विमला' 'प्रेमभिक्षा', 'इरुट्टिनुमुम्पु' (अन्धकारके पूर्व), 'आगस्ट पतिनचु' (पन्द्रहवी

अगस्त), 'सन्ध्या'—ये उनके पाँच नाटक है। 'विमला' मे कारागृहमे बन्दी तिरुवितांकुरके दीवान राजा केशवदाससे उनके बाल्य कालकी सखी विमलाका मिलन वर्णित है। 'प्रेमभिक्षा' का विषय राधाकी प्रतीक्षा करते बैठना और कृष्णका भिक्षुके वेशमे आकर राधाको ही भीखके रूपमे स्वीकार करना वर्णित है।

'इरुट्टिनुमुम्पु' ई.सन १९३५ मे रचित एक नाटक है। दूसरे महायुद्ध रूपी अन्धकारके छा जानेके पहले की सन्ध्या ही कथानकका काल है। अबीसीनियापर इटलीका नीच और नृशस आक्रमण ही इसका इतिवृत्त है। एशियाके देशोकी सहानुभूति अबीसीनियाकी तरफ थी। पर वे क्या कर सकते थे ? धर्म, नदी, मरुभूमि-आकाश, स्वतन्त्रता, पर्वत, भूमि, पुष्प और अबीसीनिया—इस नाटकके पात्र है। अबीसीनिया 'स्वतन्त्रता' नामक अपनी सन्तानको लेकर धर्मकी शरणमे जाती है और अपने ऊपर 'गोरी सभ्यता' द्वारा किए हुए आक्रमणकी शिकायत करती है। नदी उसकी सखी और पर्वत तथा मरुभूमि उसके पार्श्व रक्षक है। कर्मके मित्र नय और नियम, मृत्य मत, शास्त्र और कला—सब दुश्मनके अधीन है। अतः उससे कुछ किया नही जा सकता। इसलिए अबीसीनिया अपने पुत्रको धर्मकी शरणमे छोड़कर शत्रुसे सामर्थ्यभर लड़नेके लिए सखियों सहित जाती है। चलते-चलते वह कहती है—"मै आज जिस दयनीय परिस्थित्तिमे फँसी हुई हूँ उसे देखकर मेरी बड़ी बहने, जो परतन्त्र है, विषादग्रस्त होती होगी; लेकिन वे क्या कर सकती है।" इस नाटकके सम्बन्धमे कवि कहते है—"इसके मनोराज्यरूपी रङ्गमञ्चपर धुँधली होकर चमकनेवाली सन्ध्या, वह सन्ध्या है जिसने मानवी मूल्योंको ढँकते और ससारकी पुरोगतिके मार्गको छिपाते हुए बढ़कर अन्तमे दूसरे महायुद्धकी कालरात्रिका रूप धारण कर लिया है। 'आगस्ट पतिनंचु' स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद भारतमें आये हुए रूढ़ि-ग्रस्तताका नर्ममय उपहास है।

सन् १९४३ मे लिखित सन्ध्याका विषय और भी गम्भीर है। इसके पात्र हैं आकाश, दिवस, सन्ध्या और तारा। कविने अहिल्याकी दुःखान्त कथाके नमूनेपर इन पात्रोंकी मददसे एक दुःखान्त नाटककी रचना की है। सन्ध्या अजकी मानस-पुत्री है। जीवन-यज्ञके विधाता उग्रव्रती दिवस उसका पति है और आकाश कामुक के रूपमें चित्रित है। तारा इस कामुक की दूती है। अपने कामुक द्वारा भेजी हुई दूती की वाणीमे फँसकर सन्ध्या आकाशकी काम वासनाको सन्तृप्त करती है और यह जानकर दिवस दोनोको शाप देता है। इस शापके फलस्वरूप अहिल्या तमोमय पत्थर बन जाती है और आकाशके शरीरपर सहस्रों आँखे निकल आती है।

'राजनन्दिनी' (जिसमे 'उमाकेरल' महाकाव्यकी कथा सगृहीत है) और 'हरिश्चन्द्र' तथा 'राधारानी' नामक उपन्यास कुरुपकी अन्य गद्य रचनाएँ है। विद्यार्थियोंके उपयोगके लिए उन्होंने 'साहित्य परिचय' नामक एक व्याकरण-ग्रन्थ

भी लिखा है। इसके अलावा साहित्यिक तथा साहित्येतर विषयों वाले कई निबन्धोंकी भी उन्होंने रचना की है, जो 'गद्योपहार', 'लेखमाला', 'मुत्तुं चिप्पियुम्', 'शक्कुरिलुरिकळ' आदिमे संगृहीत है। उनका गद्य काव्यमय तथा ताल एवं लयवाला है। विचारोकी प्रौढ़ता तथा गम्भीरता और विकारोंकी तीव्रता एवं शुद्धि इसमे पायी जाती है।

'कर्मक्षेत्रत्तिल' उनकी एक गद्य कविता है, जिसमे प्रभातका स्वागत किया गया है।

काव्यके दो पक्ष है——भाव और रूप। पहले कुरुपकी कविताओके भाव-पक्षपर विचार किया जाएगा। अपनी कविताके बारेमे कुरुपने 'मेरी कविता' नामक एक लेख लिखा है। जिसका पठन उनकी रचनाओंको समझने और उनकी आलोचना करनेके लिए नितान्त आवश्यक है। वे अपनी काव्य-प्रेरणाके सम्बन्धमें कहते हैं——"आत्माके सानुओमे कहीं, अब भी बिना सूखे बहनेवाली वह अद्भुत चित्तवृत्ति ही मुझे प्रकृति और मनुष्य-जीवनपर ध्यान देने, उन्हे प्यार करने और उनका आस्वादन करनेका कौतुक प्रदान करती है। वही आत्मीयता ही मेरी कविताका——चाहे वह कितना भी कृश और अपूर्ण क्यो न हो——उद्गम-स्थान है।" वे आगे कहते है कि "मनुष्य रूप रस, गन्ध आदिका इन्द्रियों द्वारा अनुभव प्राप्त करते हुए बाह्य-प्रकृतिसे परिचित होता है, जिससे उसमे आश्चर्य एव जिज्ञासाका भाव जागृत होता है। शास्त्र-ज्ञान उसके इस विस्मयको बढ़ा ही देता है। कविता मेरे लिए आत्माभिव्यक्ति ही है।" प्रकृतिके सौन्दर्यके प्रभावके साथ-साथ कविपर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, उमर खय्याम, अँग्रेजीके कई प्रसिद्ध कवि और महात्मा गाँधीके स्वतन्त्रता आन्दोलनका भी प्रभाव पड़ा है। मलयालमके कवियोमे उल्लूर, वल्लत्तोळ और आशानका उनके ऊपर असर पड़ा है। बीसवीं शताब्दीकी नई आर्थिक-सामाजिक व्यवस्थाओंकी स्थापना, तथा अन्तरिक्ष-यात्रामें मनुष्य द्वारा प्राप्त महान् सफलता आदि समकालीन घटनाओंपर वे मुग्ध हो गए। साथ-साथ राष्ट्रोंके दो महायुद्धोके कटु अनुभवोंके बाद भी सारे देशोंको तीसरे विश्व युद्धकी तैयारीमे संलग्न पाकर मनुष्यके भविष्यपर भय और आशका भी करते दिखाई देते है। वे कहते है कि बचपनसे ही वे साम्यवादके पक्षमे थे। "पुरोहितों, सामन्तों तथा जमींदारों के प्राकृत अधिकार ग्रामीण जीवनको कहाँ तक विकृत कर सकते है इसका पता यद्यपि उस समय मुझे नही था, तो भी उन व्यवस्थाओं के प्रतिनिधियों तथा उनके आज्ञानुवर्ती आचारोंके प्रति मुझे तब भी आदर भाव बिल्कुल नही था।" 'मेरी कविता' मे वे फिर कहते है–"शुरूमे मेरी कविताकी जीव-नाड़ी, प्रकृति, प्रेम और देशाभिमान है। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रकृतिका आकर्षण और निकटता, बीच-बीचमें अनुभूत होनेवाली एकता, प्रकृतिसे होकर उससे पीछे खड़े हुए-से प्रतीत होनेवाले चैतन्यका आभिमुख्य–इन चीजोंने ही सचमुच मुझे साहित्यके एक कोनेमें जा बैठनेकी जगह दिखा दी।"

कुरुपके प्रारम्भकालीन स्वच्छन्दतावादका उपहास करते हुए ' सूर्यकान्ति 'की आलोचनाके सिलसिलेमे ए बालकृष्णपिल्लाने उन्हें यथार्थवादी बननेका अनुरोध किया था। इसका थोड़ा-बहुत असर तो हुआ। लेकिन कुरुप कहते है कि उपन्यासों और कहानियोंमे जो यथार्थवाद है, वह कविताके योग्य नही है। 'सूर्यकान्ति' के बादकी रचनाओंको लेकर सभी लोग कहने लगे कि उस संग्रहके उपरान्त कुरुपका विकास स्तम्भित हो गया है। कुछ लोगोंने तो इससे एकदम भिन्न मत भी प्रकट किया। इस वाद-विवादके सम्बन्धमे कुरुप यो कहते है—"मेरी कविता मेरी आत्माके विकासका प्रतिबिम्ब मात्र है। हो सकता है कि प्रेम के स्वप्नोकी तरह—चाहे वह लौकिक हो, चाहे आध्यात्मिक—सार्वजनिक उन्माद देनेवाले अनुभव ' सूर्यकान्ति ' की परवर्ती कविताओमे न हों। फिर भी मेरा विश्वास है कि मनुष्यकी महानतापर अभिमान करनेवाले, मानवी मूल्योके क्षत-विक्षत होनेपर पीड़ित होनेवाले, सौन्दर्य-बोध मानव जीवनकी मृत सञ्जीवनी माननेवाले एक हृदयके स्पन्दन कृतियोंमे प्रतिध्वनित होते है।" बात तो यह है कि कुरुप की कविताओं और उनके विकासकी दशाओंको सीमा-बद्ध कर सकनेवाला कोई बिन्दु काल-अक्षपर नही रखा जा सकता। प्रकृति तथा मनुष्यके क्रिया-कलापों, लौकिक-अलौकिक प्रेम और भौतिक एवं दार्शनिक तत्वोका संगम हम उनकी कविताओके सभी सग्रहोंमे पा सकते है। बात तो निश्चय ही सत्य है कि केरल तथा भारतकी प्राचीन महानता एव तत्कालीन अधःपतन, भारतीयोका अहिंसात्मक स्वतन्त्रता-आन्दोलन, महात्मा गाँधीका अभिनन्दन-अभिवादन सामयिक, महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ तथा विज्ञानकी सिद्धियाँ आदिका वर्णन उनकी प्राथमिक रचनाओमें कम और बादके उनके गीतोमे अधिकाधिक मात्रामे वर्णित है। यद्यपि गाँधीजी भारतकी राजनीतिमें दूसरे दशकसे ही विशेष स्थान प्राप्त कर चुके थे, फिर भी उनका सीधा और प्रत्यक्ष उल्लेख कविकी परवर्ती रचनाओमें ही पाया जाता है। 'इतलुकळ' मे संगृहीत 'वंदन परयुक' (वन्दन करो), 'भारतेन्दु', 'ओर्मिक्कुन्नुवो', 'जन्मर्क्ष जयिक्कुन्नु' (जन्मतिथि की जय हो रही है।) आदि ऐसी कविताएँ है। प्रारम्भकालीन कविताओंमें प्रतीकों, अप्रस्तुतों और अन्योक्तियों द्वारा इसका परोक्ष वर्णन ही पाया जाता है। हो सकता है कि इसका कारण कविकी सरकारी नौकरी हो या उस समयमें स्वीकृत प्रतीक शैलीका प्रभाव।

श्री बालकृष्ण पिल्लाने 'निमिषम्' की भूमिकामें कुरुपके काव्य-जीवनको चार दशाओमे बाँट लिया है और प्रत्येक दशामे लिखी गई कविताओके विषयानुसार वर्णन करनेके उपरान्त यह सिद्ध करनेका प्रत्यन किया गया है कि कुरुपकी पलायनवादिता धीरे-धीरे कम होती गई है।

फिर भी यही अच्छा है कि हम कुरुपको किसी वादके दायरेमे सीमित न करें। उनमे स्वच्छन्दतावाद, प्रकृतिवाद, मानवतावाद, प्रगतिवाद, पराजयवाद, पलायनवाद निराशावाद—सब कुछ पाये जाते है। जब जिस विषयने उनके हृदयको अभिभूत

किया उसीको उन्होंने अपने काव्यमे स्थान दिया है। शक्ति-सम्पन्न कविकी यही सच्ची प्रतिभा है।

कुरुपकी कृतियोंमे प्रकृतिके स्थल, वस्तु और कालवाले तीनों पहलुओंका वर्णन पाया जाता है। कालगत प्रकृति वर्णनसे मेरा मतलब कालके अपरिच्छिन्न और परिच्छिन्न दोनों रूपोसे है। जब सन्ध्या, प्रातः, भिन्न-भिन्न ऋतुएँ आदि खण्डोंमें बिना विभक्त किये, काल वर्णित होता है, तब अपरिच्छिन्न कालका विवरण होगा। दिन-रात, साँझ-सबेरे, ऋतुएँ आदिका वर्णन परिच्छिन्न कालसे सम्बद्ध है। इसी प्रकार स्थल गत प्रकृतिके वर्णनमे भिन्न-भिन्न भू-भागों—जैसे वन-पर्वत, खेत एवं मैदान, शाद्वल तथा मरुभूमि आदिका और उसमे पाये जानेवाले मनुष्येतर चेतनाचेतन वस्तुओंका विवरण आता है। तीसरे प्रकारके प्रकृति वर्णनमे अभिव्यक्त भावों-का आलम्बन कोई एक वस्तु होती है, जिसपर कविकी सारी उद्भावनाएँ केन्द्रित हो जाती है। स्थलगत, कालगत आदि वस्तुगत प्रकृतियोंका वर्णन आलम्बन और उद्दीपन दोनों प्रकारसे हो सकता है। दूसरे प्रकारके वर्णन कुरुपकी रचनाओंमे होते तो जरूर है, लेकिन कम। कारण यह कि उन्होंने खण्डकाव्यों-महाकाव्योंकी रचना नहीं की है जिनमें प्रकृतिके उद्दीपनरूपके वर्णनके लिए अनेकानेक सन्दर्भ कविको प्राप्त होते हैं। जिन कविताओंका विषय मनुष्य-जीवन, प्रेम और देशाभिमान है उनमें प्रकृतिके वर्णनोंसे भूमिका बाँधकर भावोके उद्दीप्त करनेका प्रयत्न किया गया है। देखिए, विरहिणी राधाका चित्रण करनेवाली 'उत्कंठिता' नामक कवितामें कवि प्रकृतिका वर्णन ही ऐसा करता है कि राधाके विरहकी अनुभूति तीव्रतर हो जाए :—

मन्मथ जय भेरि वारिदं मुषक्कुन्न
नन्मक्कालं, दूरचक्रवाळत्तिन् वक्किल्
कामुकागमवेल कात्तुकात्तिरिक्कुष्
कोमळाकृतियोरु कॉच्चु तारक ताने

[वर्षा ऋतु आ गई जिसमें मेघ कामदेवकी जय-भेरी बजाते है। दूरके क्षितिजके किनारेपर कोमल आकृतिवाली एक तारिका कामुकके आगमनके समयकी प्रतीक्षा करती हुई अकेली बैठती है।]

बरसातका समय है, दूर चक्रवालके किनारे एक छोटी-सी तारिका अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामे अकेली बैठी हुई है। मुग्धा-सी निशा अपने प्रियतम का नाम लिखती है और लज्जासे उत्तरीयके छोरसे उसे मिटा देती है। फिर भी कुछ नक्षत्रा-क्षर रह जाते है। बड़ा पेड़ हाथ बढ़ाकर गमनोद्यत होता है। वर्षा-लक्ष्मीका वस्त्राञ्चल पकड़ लेता है। कामुकके गृहमे जानेवाली वन-देवियोंकी पैजनियोंकी तरह झींगुरोंकी आवाज सुनाई पड़ती है।

एक और उदाहरण देखिए। सन्ध्याका समय है। प्रियतमा नहा-धोकर भालपर तिलक लगाये, नए कपड़े पहने और अपनी केशराशिको सँवारकर पीठपर

खुली छोड़ आ रही है। उस समयकी प्रकृतिके रूपका वर्णन अति सुन्दर शब्दोंमें किया गया है:—

भानुमान् सरागनाय् पुणरुम्नेरं हर्षा—
धीनयामपरदिक्कामारिल् मूर्च्छिच्छक्कुम्पोळ्,
वीतिथिल् तनित्तंकक्कसवार्न्न पूम्पट्टु
पातियुमषिञ्ञूर्न्नु वीणुपोयतु पोले
काळमेघत्तिन् तॅल्ल्ॲन्नितिळक्कोप्पेन्तिच्चक्र—
वाळत्तिल् तिळङ्ङुन्न बक्कोडे चलिक्कुन्नु
तान् तनिच्चुरङ्ङुय मातिरि शयिक्कुन्न
शांतसागरत्तिने नोक्कि विन्ननङ्ङाते
नाणवुं प्रमदवुं तळिर्क्कुं कविळोटे
ताणता चुंबिक्कुवान् भाविक्कयल्लो संध्या

—[तॅल्लटङ्ङुक कण्णे (आँख जरा रुक जाय)
सा. कौ. II]

[जब सूर्य अनुरागसे गले लगा लेता है, तब पश्चिम दिशा हर्षित होकर उसीकी छातीमे मूर्छासे गिर जाती है। चमकीले किनारोंवाला कालमेघ का एक खण्ड सन्ध्याकी अरुणिमा लिये क्षितिज की सीमापर चल रहा है, मानो मूर्च्छा-प्राप्त सन्ध्याकी जरीसे अलकृत, आधी खुली हुई रेशमी साड़ी हो। अकेले सोनेकी मुद्रामे लेटे हुए शान्त सागरको अनिमेष दृष्टिसे बिना हिले-डुले देखकर सन्ध्या खड़ी हो गई और फिर क्रीड़ा और मदसे चमकनेवाले कपोल लिये हुए उसे चूमनेको नीचे झुक जाती है न ?]

'चॅकतिरुकळ' के 'वेट्टक्कारन्' (शिकारी)मे 'काल'का एक शिकारीके रूपमें चित्रण है। इस समय कवि प्रकृतिमे भी शिकार का एक दृश्य देखता है :—

विक्रमी दिनाखेटकन् तान् वीशुं
चक्रवाळक्कुटुक्किल् निन्नूरुवान्
तन्नुटलिल् निरयवे तारकळ्
मिन्निटु मिरवाकिय पुळ्ळिमान्
वॅम्प निलके, प्पिरकिळ् निन्नु कति—
रम्पिनालॅय्तु वीषिच्चु निर्द्दयम्
चॅच्चुटुचोर वीषु मतिनेयुं
पिचुमलिलॅटुत्तुवरिकयाय्

[अपने शरीरमे नक्षत्रोंके रूपमें धब्बोंको चमकानेवाला रात-रूपी चितकबरा हिरण दिन नामक विक्रमी शिकारीके चक्रवालरूपी फन्देसे बचनेका कठिन यत्न कर रहा

है। तब पीछेसे उसने किरणोके शरोंको चलाकर उस हिरणको गिरा दिया और वह रक्त-रञ्जित उस हिरणको कन्धेपर लिये हुए आया।]

मृत्युकी अनिवार्यताका वर्णन करनेवाली 'इन्नु ञान् नाळॅ नी' (आज मै, कल तू) नामक कविताकी भूमिकामे कवि सुनसान वातावरणका भीषण और गम्भीर चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है।

वस्तुगत प्रकृति वर्णनका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। 'वेलु' और 'जानु' जब विवाहित हुए तब दोनोके मनमे जीवनको सम्पन्न एवं सुखपूर्ण बनानेके स्वप्न थे। किन्तु आगे चलकर इनको निराशा ही हाथ लगी। अपनी प्रथम सन्तानके जन्मसे जानु पक्षाघातका आजन्म शिकार हो गई। बच्चा बच जाता तो थोड़ा ढाढस भी मिलता, लेकिन वह भी होने नही पाया। 'जानु' हतोत्साह हुई, लेकिन 'वेलु' का उत्साह बना रहा। इस दम्पतिका वृत्त 'इणक्कुरु-विकळ' (कुरुवी पक्षीके जोड़े—'अन्तर्दाहम्') मे आया है जहाँ भूमिकाके रूपमें कुरुवी-पक्षियोंके एक जोड़का वर्णन है। प्रकृतिकी एक झाँकी दृष्टव्य है :—

नॅल्लुकळ् निरन्नु पोय् पच्चच्च पाटतॅल्लाम्;
तॅल्लकलत्ताप्पोलि नीर्ति निन्नाटुं तॅङ्ङल्
लोलनल्लोलक्कुञ्ञ क्कीरिन.ल् कूटुटाक्कुम्
वेलयिल् मुष् किन काँच्चिणक्कुरुविकळ्
तङ्ङळिलक्कुतुकमोटोतुकयावामुळ्ळिल्—
त्तिङ्ङ्ङुं नव्यारब्ध गार्हस्थ्य संकल्पङ्ङळ् !
वासनथालीवण्णं रंटु चित्तत्तॅ स्नेह—
शासनाधीनं निर्त्तु प्रकृति जयिक्कुन्नु !

[खेतोमे धानके पौध पक गए। कुछ दूरपर, अपने पंखोंको खोलकर नाचनेवाले नारियलके पेड़पर धानके छोटे पतले डण्ठलोसे कुरुवीके जोड़े घोंसला बनानेमे लगे है। वे बड़े कुतूहलसे दाम्पत्य-जीवनकी कल्पनाएँ एक दूसरेको कह सुनाते होंगे। दो हृदयोंको वासना बलसे इस तरह स्नेहके शासनके अधीन करनेवाली प्रकृति की जय हो रही है।]

भूमिकाके रूपमे प्रकृतिके ऐसे वर्णन और भी कई स्थलपर पाये जाते है।

अब हम आलम्बन रूप प्रकृति वर्णनपर विचार करेंगे। स्थल-काल, वस्तु-रूप प्रकृतिके ऐसे कई दृश्य हम कुरुपकी कविताओंमे देख सकते है। प्रकृतिके इस चित्रणको बालकृष्ण पिल्ला पलायनवाद मानते हैं। उनकी रायमे समकालीन जीवनकी विवेचना करनेवाली कविताओंको छोड़कर शेष सभी कृतियाँ पलायन बुद्धिसे प्रेरित है। वे पलायनवादको स्वच्छन्दतावाद की एक उपशाखा ही मानते है। उनके मनमे विकारोंका कृत्रिम विस्तार ही स्वच्छन्दतावादका लक्षण है। 'सूर्यकान्ति' को स्वच्छन्दतावादी कविताओंका एक सुन्दर संग्रह कहकर जब

बालकृष्ण पिल्लाने कुरुपका उपहास किया था, तब इसके उत्तरके रूपमें कुरुपने अपनी कविताको आश्वासन देते हुए यों लिखा था :—

काँऽलुं कॉट्टुंकाट्टुं क्षणिकङ्ङळाणव—
कॉण्टलं भरञ्ञालुमप्पुरसिल्लातामो
श्याममाय् प्रशांतमाय् रमणीयमाय् मिन्नुं
व्योम मामहानित्य तत्वत्तॆ प्पुकष्त्तुक !
लोकत्तिन् मुख भावं मारिटां निषल् पोले,
एक सुन्दर स्थिर सत्तयुंट तिनुल्लिल् ।
एक वुमरूपवुमाय जीवितमल्लो
लोकत्तिन् नानात्वत्तिन्नटियिल्, क्षमिक्कुक ।
उरक्कमिळच्चिरु न्नीटुं ञान् नक्षत्रत्ति,—
लुरक्कॆ क्केणुं कॉण्टु पोकुं ञान् कॉट्टुंकाट्टिल्;
सोमलेखयिल्क्कूटॆ क्कामिक्कुं कटलिनॆ,
सोमलेखचॆ त्तन्नॆ मुकरुं कटलाय् ञान्;
कूटुविट्टेवं कूटु मारि यी प्रकृतिचि—
लोटुवानॆ न्तानथमाणॆन्नो, क्षमिक्कुक !

['एॅन्टॆ कवितयोटु' (मेरी कवितासे)—'नवातिथि']

[मेघ और आँधी क्षणिक हैं; उससे थोड़ा ढँका हुआ तो है, तो भी उसके पीछेका श्याम, शान्त, रमणीय कान्तिवाला अम्बर नही है, ऐसा कभी हो सकता है, क्या ? उस महान् एवं नित्य तत्वका गान गाए ।

छायाकी तरह लोककी मुख-मुद्रा बदल सकती है । लेकिन उसके अन्दर एक स्थिर और सुन्दर सत्ता रहती ही है । लोककी विविधताके तलमें एक और अरूप जीवन है ही । मै जागते हुए रहूँगा नक्षत्रोंमे और जोरसे रुदन करता हुए उड़ता रहूँगा आँधीमें । चन्द्रके जरिये मै समुद्रको प्यार करूँगा और समुद्र होकर सोमलेखाका चुम्बन करूँगा । क्षमा करो, इस प्रकार घोंसला बदलते-बदलते मै इस प्रकृतिमें दौड़ता रहना चाहता हूँ ।]

बादको दिखाया जाएगा कि जितनी मुखरतासे कुरुप अपने प्रकृति सम्बधी गीतों और प्रकृतिमें अवस्थित अभेद, सुन्दर और स्थिर सत्ताके अनुभवका समर्थन करते है, उतनी ही वाचालतासे बादकी कुछ रचनाओंमें मनुष्यकी सिद्धियोका भी ।यहाँ केवल आलम्बन रूपमे प्रकृतिके वर्णनके कुछ प्रसंग उपस्थित किए जा रहे है । पहले हम काल को लें ।

'साहित्य कौतुकम्' के प्रथम भागके 'कालम्' नामक कवितामे कालका एक वृक्ष के रूपमें वर्णन हुआ है और दिनोंका उसकी कोंपलोके रूपमें । यह कालवृक्ष अपनी छायामें आनेवाले सभी जीव-जन्तुओंको खा लेता है । तीसरे भागके 'नित्यता'

नामक पद्यमें कवि कालका एक लाल कमलसे रूपक बाँधते हैं और कहते हैं कि सत्यके रूप चमकनेवाले अनादि तेजके लगनेसे ही यह खिल उठता है। चौथे भागमें बिना जीन और लगाम कसे तेज दौड़नेवाले घोड़के रूपमें कालका वर्णन हुआ है। उसके खुरोंके चिन्ह ही चन्द्र और सूर्य है; मुँहसे निकलनेवाला झाग ही दिन है और पदाघातसे उठनेवाली धूल ही अन्धकार है और सन्ध्याएँ सिरपरकी चामर-शिखाएँ हैं। समुद्र उस धूलिसे भर जाता है और पहाड़ उन पदाघातोंसे गायब हो जाता है। यह घोड़ा कभी पीछे नही हटता। किसीको मालूम नहीं--यह कहाँसे आता है और किस दिशामें बढ़ता है। कालकी लीलाएँ मनुष्यमे भय, विस्मय, शोक आदि भावोंको जगा देती है। फिर 'पूजा पुष्प' मे कवि कालको काल सर्पका रूप दे देता है, जो ग्रह-मण्डलोंके चारो ओर मँडराते हुए घूमता रहता है। 'निमिषम्' नामक सग्रहमें उसी नामकी एक कविता है, जिसमे कालका सामान्य वर्णन न होकर उसके अंशरूप निमिषकी ही तितलीके रूपमे चर्चा है। ये तितलियाँ जीवन-पुष्पके मधुको पीती जाती है। प्रत्येक निमिष तितली देखनेमे तो क्षुद्र है, लेकिन उसके पंख-चालनसे बड़े-बड़े ग्रह भी तीव्र वेगसे आगेको जाते है।

कालके उपर्युक्त वर्णनोसे उसकी द्रुतगामिता, अघृण्यता, सर्वग्रासकता आदि विभूतियाँ प्रकट होती हैं और साथ-साथ यह दार्शनिक सिद्धान्त भी सूचित किया गया है कि कालका ईश्वरसे ही विकास होता है (देखिए 'नित्यता')।

अब खण्ड-कालके कुछ वर्णनोको देखिए, जिनमे कुरुपजी ऊषा, सन्ध्या, दिन, रात, नववर्ष आदिका विवरण देते है। प्रभात-प्रकृतिका एक वर्णन इस प्रकार है:--

वारम्पिळिक्कुरि अणिञ्ञतु तेञ्ञु माञ्ञु,
तारङ्ङ्ळिङ्ङु मळिवेणियिल् निन्नुतिर्न्नुम्,
आरम्यकांचन मयां बरयाय् प्रभात--
नेरत्तुणर्न्नु विलसु प्रकृतिक्कु कूप्पाम् ॥१॥
आ वातपोत परिधूत सुरद्रुजात--
सूनोत्थनिर्मलसरागपराग पाळि
ताराकदंबतरळद्युतिमङ्ङुमारु
धौतांबरोपरि परन्नु परन्निरिक्काम् ॥२॥
नेरट्ट भास्कर कराळ मृगेन्द्रनन्ध-
कारद्विप्रवर कुंभमटि च्चुटक्के
आरक्तमाकिन करङ्ङ्ळिलनिन्नु भूरि-
दूरं तॅरिच्चु नरुमुत्तु हिमच्छलत्ताल् ॥३॥

('अहर्मुखम्' सा. कौ I)

[जिसके द्वारा लगाया हुआ सुन्दर चन्द्ररूप तिलक घिसकर हट गया था; जिसके भ्रमर जैसी वेणीसे फूल छिटक रहे थे, और जो सुन्दर स्वर्णमय अम्बर पहने प्रभात-वेलामे जाकर चमक रही है—उस प्रकृतिको मेरी वन्दना है ।]

मन्द समीरसे गिराए हुए सुरवृक्षके फूलोंका लाल पराग धुले हुए आकाशमें ऐसा फैला कि नक्षत्र समूहकी तरह घृति क्षीण हो रही थी ।

जब सूर्य रूपी बलवान और भयंकर सिह अन्धकार रूपी श्रेष्ठ हाथीका मस्तक तोड़ रहा था तब उसके लाल हाथसे बहुतसे मोती हिम बिन्दुओके छलसे फैल गए ।]

'साहित्य कौतुकम्' के तीसरे भागमे सन्ध्याको एक युवतीके रूपमे प्रस्तुत किया है। इसमे अमूर्त आशयको मूर्त देकर उन्होने उसे अधिक सरल एव सरस बना दिया है । अब तक कवि प्रकृतिके अधिक-से-अधिक निकट आने, उसमें सप्राणताका अनुभव करने और उससे तादात्म्य प्राप्त करनेमे लगे थे । इसीलिए सन्ध्याको वे माता कहते है । और प्रार्थना करते है कि सौन्दर्य रूपी दिव्य औषधि लगाकर नित्य दु.खमे पडी हुई मेरी आत्माको आनन्द दिया जाए ।

चरमसागरत्तिन्टॅ करयिल् स्नानानंतरम्
तिरळॉळियॅषु संध्या वरवर्णिनी
घनलेश घनकेशं तळिरांगुलियाल् चिक्की,
कनकप्पट्टटि वरॅ ञात्तियुटुत्तुम्,
तटमेरिमरयुन्न कटललकळिल् क्कुळि--
रुटलिन् कांतियाल् पॉन्नु चॉरिञ्ञु निन्नु ।
मायाय्कयि मायामयी, भावत्कज्योतिस्साल् दुःख
च्छाया मुक्तमाय जगत्तिरुळिलाष्त्ति
जीवितत्तिन् वेदनकळ् मरप्पिक्कुं सुखलेपं
भूविलेकं--सौन्दर्यमॉन्नतिन्टॅ नामम्
ऑन्नुमात्रं ञानरियु, मॉन्नुमात्र माग्रहिक्कु,
मॉन्नुमात्रमास्वदिक्कुं, नित्यसौन्दर्यम्
पुरट्टुक, पुरट्टुक, निरघमादिव्यौषधम्
दुरंतयातनामासॅन्नात्माविलंब ।

[द्युतिभरी सन्ध्यारूपी सुन्दरी पश्चिम सागरके किनारेपर स्नानके अनन्तर खड़ी अपना मेघरूपी केश सॅवार रही थी। वह पदतल तक लम्बित स्वर्णिम रेशमी कपड़ा पहने हुए थी। तटोके ऊपर चढ़नेवाली तरगोमे वह अपन शरीरका सोना बरसा रही थी ।

हे मायामयि, छिप मत जाओ। तुम्हारी ज्योतिसे दुःख छायासे मुक्त संसारको अन्धकारमे डुबाकर जीवनकी वेदनाओको भुलानेवाला एकसुख-लेप है

भूमिमे, उसका नाम है नित्य सौन्दर्य। माता, यातनासे भरी हुई मेरी आत्मापर उस दिव्यौषधिको लगाओ——लगाओ!]

"पूजापुष्प" की 'दिवस' नामक कवितामें वे दिनकी तुलना भगवान ईसा मसीहसे करते हुए कहते है कि उनका जन्म सारे जगत्के मंगलके लिए है और उस जन्मके अवसरपर भी दिव्य कान्तिवाले एक नक्षत्रका उदय हुआ था।

आलम्बनके रूपमे स्थलगत प्रकृतिका वर्णन कुरुपजीकी रचनाओंमे कम पाया जाता है। 'तिरुनावाय' अभिमुखत्तु आदि कुछ कवितायें मिलती तो है; लेकिन इनमे प्रकृतिका वर्णन उनका लक्ष्य उतना नही जितना केरलकी प्राचीन संस्कृति और विकासका विवरण और वर्तमानकालकी अवनतिका चित्रण करना।

नदी, पर्वत, नक्षत्र, चन्द्र, पुष्प, भ्रमर, पवन, मेघ, इन्द्रधनुष, धूमकेतु, हिमविन्दु और छोटी-बड़ी कई वस्तुओंपर कुरुपजीने कविताएँ लिखी है। उनके लिए ये वस्तुएँ निर्जीव या क्षुद्र नही है। वे उनमे भी प्राणोंका अनुभव करते है, उनकी उपासना करते है और उनसे मित्रता जोड़ लेते है। प्रकृतिका मानवीकरण और उसमें से प्रत्येक द्वारा मनुष्यको कुछ-न-कुछ सन्देश दिला देना——यही कुरुपजीकी विशेषता है।

अपने जीवनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमे एक ही वस्तुपर कुरुपजी द्वारा लिखी हुई कविताएँ उनके मानसिक विकासका दिग्दर्शन कराती है। एक नक्षत्रको हम ले लें। प्रारम्भ कालमे किसी नक्षत्रको देखकर कुरुपजीने गाया था:——

पाषिरुळिलटिञ्ञु किटक्कुन्न
पारिटत्ते प्रकाशोन्मुखमाक्कान्
सावधानमभ्यागतनां जगत्
पावनात्मन, भवानॆषुन्नळ्ळवे,
स्वागतगीतं पाटुन्नु पक्षिकळ्;
सागरं मुषक्कुन्नु पॆरुम्परा।
कोमळाकृते, निन् दर्शमत्तिनाल्
कोळमयिरक्कॊळ्वु पच्चनॆल् प्पाटङ्ङळ्।
हन्त! कूटिरुट्टिन्टॆ मलिनमा——
मंतरंगं प्रकाशवत्ताकुन्नु

[अन्धकारमे डूबे हुए लोकको चमकानेके लिए धीरे-धीरे आनेवाले पावनात्मन्, आपके पधारते-पधारते, पक्षी गण स्वागत-गीत गाते है और समुद्र वाद्य बजाता है। हे कोमल रूपवाले, आपके दर्शनसे धानके हरे खेत रोमाञ्चित हो रहे है और घने तिमिरका मलिन अन्तरंग भी प्रकाशसे भर उठता है।]

इतना कहते-कहते कविका मन उस ईश्वरीय शक्तिकी ओर जाता है जिसके पदका धूलिकण ही यह नक्षत्र है। अगर यह बात ठीक हो, तो उस शक्तिके दर्शनसे कितना कौतुक मिलेगा!

प्रेमरूपनां दैवमे, निन् पद
तामरप्पू पॉषियुं परागवुम्
इत्र कौतुक दायकमाणँकि--
लॅत्र कौतुकमेका निन् दर्शनम्

[हे प्रेमस्वरूप ईश्वर, तेरे पद-कमलसे झड़नेवाला यह पराग ही इतना कौतुक देनेवाला हो तो तेरे दर्शनसे कितना अधिक कौतुक मिलेगा !]

'साहित्य कौतुकम्' के तीसरे भागमे एक सध्या-नक्षत्रका वर्णन है। यद्यपि इसमे उल्लेखो, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंका ताँता लगा हुआ है और नक्षत्रका परोपकारी मनुष्यके रूपमे चित्रण हुआ है, जिसके प्रभावसे आग बरसानेवाला दिवस भी भूमिके शरीरपर गहरे अनुरागसे हाथ फेरता है, तो भी कविकी कल्पना और आगे उड़ जाती है, और उनकी आत्मा शारीरिक और भौतिक चिन्ताओंसे मुक्त होकर कल्पनाके सहारे ऊपर उठते-उठते नित्य अखण्ड, तमोरहित एवं प्रकाशयुक्त किसी पावन आकाशमे पहुँच जाती है और यों गाने लगती है :--

निन्निलुमॅन्निलुं द्योतिक्कुं ज्योतिस्सु
मॉन्निन् पॉरिकळ् तानायिरिक्काम्।
मूलमॅन्तल्लॅकिल् नीयुज्ज्वलिक्कुम्पोळ्
मालकन्नॅन्नात्मावुल्लसिप्पान्।
ऑट्टु निरमट्टुं पाषपॉटि पट्टियुम्
कॅट्टुं किटक्कुं मनुष्यात्माविल्
ऑन्नु कटक्कुरु, नाकीयनिर्वृति
चिन्नुक सौभग सर्वस्वमे।

[तुममे और मुझमें चमकनेवाली ज्योति एक ही (अग्नि) के स्फुलिंग होगी। नही तो तुम्हारे जलनेपर मेरी आत्मा दुःखमुक्त होकर क्यों चमक उठती। अपना रग खोई हुई, धूलसे लगी हुई और बुझी हुई पड़ी है मनुष्यकी आत्मा ! तुम उसमें एक बार आ जाओ और स्वर्गीय शान्ति छिटका दो। हे मेरे सौभाग्य सर्वस्व !]

यही नक्षत्र पूजापुष्पके 'नक्षत्र गीत' मे वाणीकी शक्ति पाकर मनुष्यको अपनी कहानी सुनाता है और परोपकारका सन्देश देता है :--

वीणु ञानाकाशत्तिन्नत्यगाधतयिकल्
ताणुपोचेक्कां मूच्छाधीनमा, यल्लॅन्नाकिल्
भस्ममायेक्कां ; तीरे क्षुद्रनामॅन्नॅप्पिन्नॅ
विस्मरिच्चेक्कां काल, मॅन्नालु मितु सत्यम्--
जीवितमॅनिक्कॉरु चूळयायिरुन्नप्पोळ्--
भूविना वॅळिच्चत्तिल् वॅप्म ञानुळवाक्की

[हो सकता है कि मैं आकाशकी अगाधतामे गिरकर मूच्छित हो जाऊँ और डूब जाऊँ; नही तो भस्म हो जाऊँ। फिर भी यह एक सत्य है कि जब मेरा जीवन मेरे लिए भाड़-जैसा था, तब मैने उस प्रकाशसे भूमिको देदीप्यमान कर दिया।]

'अन्तर्दाह'मे वक्ता और श्रोताके स्थान वदल जाते है और कवि अपने बचपनके साथी नक्षत्रसे मानव-जीवनके दुःखमय और आशका-भरे वृतान्त कह सुनाता है:—

शान्तसुन्दरमाय निन् लोकमल्ला शोका—
क्रांतजर्जरितमाय् तिरियुं मम लोकम्
केवलं घनीभूतमाकिय कण्णीराणी—
भूतलं ; नॅटुवीर्पाणीयंतरीक्षं पोलुम्
पिन्नॅयुं कुरुक्कुन्नु पिन्नॅयुं विळरुवान्,
पिन्नॅयुं जीर्णिक्कुवान् शाश्वतमॉन्ने दुखम्

[तुम्हारे लोकके समान शान्त-सुन्दर नही है शोक-आक्रान्त और जर्जर मेरा लोक, यह भूमि घनीभूत आँसू ही है और अन्तरिक्ष लम्बा उच्छ्वास है। यह वार-बार पीला और जीर्ण होनेके लिए ही पुन -पुनः प्रस्फुटित होता है। अगर कोई चीज शवाश्वत हो तो वह दुःख ही है !]

कवि रो उठते है कि वे एक दूसरेसे बहुत दूर हो चुके है :—

ऍत्र दूरॅयायॅन्नो नीयिप्पोळॅन् कौमार
मित्रमे, नी विण्णिन्टॅ पैतल्, ञान् मण्णिन्टॅयुम्

[हे मेरे कौमार मित्र, तुम मुझसे कितने दूर हो गए हो अब ! तुम स्वर्गकी सन्तान हो और मैं मिट्टी की !]

'पुष्पगीतम्' तथा 'वनपुष्पम्' ('मा कौ' III) 'पकजगीतम्' (सूर्यकान्ति) आदिके पुष्प आध्यात्मिक प्रेमके वर्णनके लिए प्रतीक रूप है तो 'सूर्यकान्ति' नामक कवितामे सूरजमुखीके मुँहके जरिए कवि पवित्र एवं एकाग्र प्रेमका वर्णन करते है।

'विश्व दर्शनम्' की 'विटर्न्नेकिल्' (अगर खिले तो) नामक कवितामें कवि गुलाबके फूलमे अपनेको और अपनेमे सारे ससारको देख लेते है और इस तरह पारस्परिक सम्बन्धकी एक शृखला-सी बन जाती है :—

कूरिरुट्टिटलुं कॉटुंकाट्टिटलुं, जडतयिल्
वकूटियुं, नित्यप्रकाशत्तिनॅ दर्शिप्पानाय्
उन्मुखमाजन्मांतं ध्यानिक्कुनिन्नोरित्तारि—
मुळ्ळुत्कंठापूर्वं निल्पतुं ञानाकुन्नु
लोकमाकवे व्यापिच्छिरिक्कुं ञानीलोल-
लोलमां दळं तोरं सर्गताळत्तिन्नॉप्पम्
नर्तनं चॅय्वू ; सीत्कारत्तॉटॅन् निश्वासत्तिन्
नेर्त्त सौरभं नुकर्न्नलिवू जगत्प्राणन्

[घने अन्धकारमे, आँधीमे और जड़तामे भी नित्य प्रकाशके दर्शनके लिए उन्मुख होकर जन्म भर ध्यान लगानेवाले इस पुष्पके अन्दर मै बड़ी ही उत्कण्ठा से बैठा हुआ हूँ। संसार भरमे व्याप्त मै इसके प्रत्येक लोलातिलोल दलपर सर्गके तालके अनुसार नाच रहा हूँ। सीत्कारसे मेरी सूक्ष्म सुगन्धका आस्वादन कर जगत्प्राण पिघल रहे है।]

उसकी लालिमामें कवि सात्विक प्रकाशके सैनिकोंको आगे ले जानेवाले श्रीकृष्ण ईसामसीह, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषोंके—आध्यात्मिक वेत्ताओंके रक्तकी आभा ही देख लेते है और उसके कपोलपर लगे हुए हिम-कणमे हजारो 'तथागतों'के दयार्द्र आँसुओकी भी आभा उन्हें दिखाई देती है। 'वॅळ्ळिल् परवकळ' (बलाहक पक्षी) 'कपनि मुट्टत्तॆ काट्टुमुल्ला' (कारखानेके आँगनकी वनजुही) ' में औद्योगीकरण की बुराइयोका वर्णन है।

मनुष्य जीवनपरक कविताओमे कई तो केरल तथा भारतके ऐतिहासिक अतीतसे सम्बन्ध रखते है। 'नित्य कामुकर 'मे राधा और कृष्णका प्रेम ही विषय है। "मट्टॉरु नचिकेतस्सू" (दूसरा नचिकेत) मे कठोपनिषद के वाजश्रवके के ढंगपर वर्तमान युगके एक किसान की कथा है। वाजश्रवने जब सर्वस्व दान कर दिया तब पुत्र नचिकेतने उनसे पूछा—"आप मुझ किसको देंगे ?" पिताने जवाब दिया—"मृत्युको !" और फिर उस वादेका पालन भी किया। धर्मराजने उसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश देकर मुक्तिके योग्य बना दिया। कुरुपका किसान बीसवीं सदीके अनेक वाजश्रवमेसे एक है, जो अपने बीमार पुत्रके बछड़ेको ऋण चुकानके लिए बेच देता है और जब पुत्र पूछता है—"तुम मुझ किसको दे दोगे" तो बिगड़कर जबाव देता है—"मृत्युको !" यमराज और उस कृषक बालककी बातचीत ही इस कवितामे वर्णित है। यम इस प्रकार कहकर उसे मर्त्यलोकमे वापस भेज देते है :—

जीवितमॉरु कॉटुंकाट्टाणु कुञ्ञे, दाहम्
ताविटुमॉरु महाज्वरमाणतिल् तन्ने
पोवुक तिरिच्चु नी ; सुखविश्रमत्तिनु
पोरिक कालं वन्नाल्...... ।
रोगमि, ल्लसुखमि, ल्लिल्लल्ल सम्पन्नन्मार तन्
भोगचापलं, कष्टं वन्नलट्टलुमिल्ल ।
शांति, शाश्वतशांति मात्रमुंटज्ञन्मार् सं-
भ्रांति कॉळ्ळुकयाणु मृत्युवॆन्नॆन्ङञान् केट्टाल् ।
निश्चलमृतियिल् निन्नाणु जीवितमॆल्लाम्,
निच्चिलु मुंटा कुन्नतितिले लयिदकुन्नु ।

[बच्चे, जीवन एक आंधी है; दाह पैदा करनेवाला महाज्वर है। तू उसीमे वापस जा। जब समय आ जाए तो सुख-विश्रामके लिए लौटना। यहाँ

न तो बीमारी है, न दुःख और न अमीर लोगोंकी भोग-चपलता। कर्ज भी यहाँ विवश नही करता। यहाँ शान्ति ही शान्ति है—शाश्वत शान्ति। जब कभी मृत्युके बारेमे सुनते है, तब अज्ञ लोग भ्रान्तिमे पड़ जाते है। जीवनका आरम्भ निश्चल मृत्युसे ही है, जो उसमे पैदा होता है और उसीमे लीन हो जाता है।]

ऐसी दशामे वर्तमान जीवनके कष्टोंसे बचनेके लिए कोई मर जाना चाहे और अपनेको सारे झञ्झटोंसे मुक्त करे तो क्या आश्चर्य है। 'यशोधरा' में भगवान बुद्धके प्रत्यागमनकी कथा है। उनके प्रत्यावर्तनपर यशोधराने पतिके चरणोपर अपना जीवन अर्पित करते हुए उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। तब उन्होंने 'शान्ति' मात्र कहा। हाथ बढ़ाकर उसे उठाया तक नही। इसलिए वह मान किये बैठी है। भगवान आँगनमे खड़े थे। फिर भी उनका स्वागत करनेके लिये वह आगे नही बढ़ती राहुल आकर पूछता है—"तू यहा क्यों बैठी है। पिताजी तो दादाजीके साथ आँगन तक आए तो है।" यशोधराने कहा—"तू जा और उनके पाससे 'त्रिरत्नों' को ग्रहणकर।" राहुलने ऐसा ही किया। और तब यशोधरा इस प्रकार कह उठी—

"............. ऎनिक्कॊन्नु-
मिल्लिनि, यॆल्लां कॊटुत्तु कषिञ्ञु ञान्
सर्व क्षणिकमां, सर्ववुं शून्यमाम्
सर्ववुं दुःखमामॆल्ला मरिञ्ञु ञान्—
आलिन् तणलि लिरि क्कातॆ योमेट-
मेलिरुन्निट्टुं वियोगसमाधियाल्।
नारियाय् पोयि ञान, ष्टांगमां व्रतम्
नाथनॆनिक्कु विलक्कुमो निर्दयम्?
नारियाय् पोयि ञानात्मीय निर्वृति
नाथ नॆनिक्कु मनुवदिक्किल्लयो?

[अब मेरा कुछ भी शेष नही रहा। मै अपना सब कुछ दे चुकी। सब कुछ क्षणिक है, शून्य है—दुःख है। बिना पीपलके वृक्षके तले बैठ, इस महल-मे वियोगकी समाधि लगाते हुए मैने सब कुछ जान लिया। मै नारी हूँ, क्या इसके कारण 'अष्टांग' वाला व्रत मुझे नाथ नही देगे? क्या वे मुझे आत्मिक निर्वृति नही देगे?]

'वीरवधु' (सा. कौ. I) में एक राजपुत्रीकी आत्महत्याकी कथा है, जो सम्राट अकबरके बलात्कारसे अपनेको बचानेके लिए ही इस मार्गका अवलम्बन करती है। 'स्त्री' मे देश-प्रेमके समक्ष वैयक्तिक प्रेमका उत्सर्ग वर्णित है।

'तिरुनावा' (सा. कौ. IV) मे केरलके प्राचीन प्रजातान्त्रिक शासनकी महिमा गाई गई है और वर्तमान परतन्त्रताकी हेयता बताई गई है।

'अषिमुखत्तु' मे कवि केरलकी प्राचीन राजधानी महोदयपुरमे जाते है जहाँ पॅरियार नदी समुद्रसे मिलती है। नदी और समुद्रके संगमको मलयालम्मे 'अषिमुखम्' कहते है। यहाँ खड़ होते-होते कविको केरलके अतीतकी सैन्य-शक्ति व्यापार-सम्बन्धी श्रीवृद्धि और वर्तमान कालकी दुर्दशाका दृश्य याद आ जाता है। दोनोंका वर्णन करते हुए कवि कहता है—"वे दिन फिर आ जाएँग जब दुनिया मेरी मातृभूमिकी आवाज फिर सुनेगी।" 'पाट्टुन्न कल्लुकळ' मे (गानवाले पत्थर) मे अन्तिम पॅरुमाळ (केरलके प्राचीन सम्राटोंकी उपाधि) द्वारा केरलके सामन्त प्रभुओके बीच विभाजित किए जानेकी दुरन्त कथा, 'तृक्कुलशखरपुरम्' मन्दिर (इसी जगहपर यह विभाजन हुआ था) के पास पडे हुए पत्थर कह सुनाते है। 'चरित्रत्तिलॅ किनावुकळ' (इतिहासके सपने) मे साम्प्रदायिक साम्राज्योंके अपने विफल प्रयत्नोपर अकबर, औरंगजेब और शिवाजी रोते और पछताते दिखाई देते है। नाप्पाट्टु नारायण मेनन, तुंचत्तु एॅषुत्तच्छन् आदि कवियोंकी महिमा भी उन्होंने गाई है। इसके अलावा उन्होंने व्यक्तियोंके प्रेमानुभवोंके कई वृत्त भी कहे है जिनमेसे वे अधिकांश तो अतीतकी स्मृतियोके रूपमे ही चित्रित है। कुरुपजीको वियोग संयोग से अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। कविने समकालीन घटनाओंको भी नही छोड़ा है। 'नाळे ('कल') ('पूजापुष्प') में आनेवाले नए युगका चित्रण है, जो अवसर की समता, दरिद्रता और शोषणका उन्मूलन, प्रयत्नकी विजय आदिपर आधारित होगा। 'प्रतिकार' (चॅंकतिरुकळ) मे इटलीमे लड़ाईपर गए हुए एक केरळीय सैनिककी अपने जन्म-देशके 'तिरुओणम्' नामक उत्सवकी स्मृतियाँ है। 'नटुङङट्टे' ('स्तब्ध हो जाय'—'निमिषम्') मे नाजी जर्मनीके पतन और 'जाव योट्टु' ('जावासे'—वनगायक), तथा 'भारत सन्देशम्' ('मुत्तुकळ') मे जावा तथा चीनके प्रति भारतका सन्देश है। भारतके स्वतन्त्रता-आन्दोलन और उसके कर्णधार महात्मा गाँधीपर भी उन्होंने कई कविताएँ लिखी है। उसी संग्रहके 'रहीम' मे हिन्दू-मुस्लिम दंगेमे चौदह वर्षके एक विद्यार्थी रहीमके मर जानेकी कथा है। 'ऍन्तु वळर्च्ची' (कितना बड़ा विकास—'वॅळिच्चत्तिनॅ परवळ्'), 'अम्मामन् आशीर्वादिक्कुन्नु' ('मामा आशीर्वाद देते है'—विश्व दर्शनम्) 'कण् विटर्न्न कालम्' (नेत्र-विकास प्राप्तकाल') आदिमें मनुष्यकी उन महासिद्धियोका वर्णन है जो मनुष्य-द्वारा पेड़की शाखाके धनुषपर वनलताकी डोरी बाँधकर चलाए हुए शरसे निकट भूमिके जीत लिये जानेसे शुरू होकर रूसकी स्पुतिनिक विजय तक फैली हुई है। 'अन्त्य-मालयम्' (विश्व दर्शनम्) मे केरलके 'विमोचन युद्ध'के सिलसिलेमे कम्यूनिस्ट सरकारकी पुलिस सैनिकोंकी गोलीसे मृत गर्भिणी फ्लोरीकी कथा है। 'एकलोकम्' (पथिकन्टॅ पाट्टु) मे कवि इतिहास-समुद्रके बीचमें उठनेवाले मनुष्यके उस अखण्ड राज्यका वर्णन करते है जिसमे भूगोल विज्ञानकी रेखाओ द्वारा

वना हुआ जाल मानवके पैरोंसे खिसक जाता है। 'विश्व दर्शनम्' के 'चन्द्रनक्कट्टिल' (चन्दनकी खाट) मे सामन्तशाहीकी निरंकुशताका कविने वर्णन किया है। इस प्रकार कवि मानव जातिके अतीत और वर्तमानके व्यक्तिगत एवं सामूहिक विजयो-पराजयोंका वर्णन करते हुए एक सुन्दर भविष्यकी ओर सकेत करते हुए दिखाई देता है।

'इणक्कुरुविकळ्' (कुरुवी पक्षीके जोडे) मे प्रतिकूल आँधियों और तूफानोंमें भी अविचल अपना सिर ऊँचा किए, तथा छातीको ताने और चट्टानकी स्थिरतासे खड़े हुए 'वेलु' का रूप वर्णित है। उनका जीवन दर्शन यह है—

द्रोहियां दुर्दैवत्तिन् कण्णिलिङङनें नम्मळ्
मोहिच्चाल् पराजयं सम्मतिक्कुकयावुम्।
कैकटिच्चवा दुर्दैवं काणट्टे—नां रंटाळुम्
कैकळ् कोर्त्तॅन्नुं नीतुं ताणालुं तळर्न्नालुम्।

[(वेलु अपनी बीमार और अत: निराश पत्नीसे कहता है) वाधक दुर्दैवकी आँखोंमे अगर हम इस प्रकार मर जानेकी अभिलाषा करें तो वह पराजय माननेके ही समान होगा। वही दुर्दैव आश्चर्य चकित होकर देखे—हम दोनों एक दूसरेका हाथ पकडे हुए तैर जाएँगे—चाहे हम डूब जाएँ, चाहे थक जाएँ।]

'जैत्र यात्रा' मे बीसवी सदीके रथका वर्णन है जिसमे निर्भय और भाग्य-जयी मनुष्य बैठे है। प्रकृतिकी शक्तियाँ ही इसके घोडे है। इस मनुष्यके सामने कोई भी प्राकृतिक रहस्य अनुद्घाटित नहीं रहेगा। चाहे उस मनुष्यका रूप धूलि-कण जैसा क्षुद्र हो, फिर भी ससारके पुनर्विधानका वही अधिकारी है। साधारण और सफल कर्मोंमे प्रवृत्त होनेकी प्रवणता और निपुणता उसीको मिल चुकी है—

'अवनसामान्य सफलकर्मोन्मुख—
प्रवण निपुणतयिन्नधनम्'

यह मनुष्य इच्छामरणी और स्वच्छन्द जीवन बितानेवाला है। 'अम्मामन् आशीर्वदिक्कुन्नु' मे चन्द्र अपनी बड़ी बहन भूमिको आश्वासन देते हुए मानवकी महिमा गाता है और कहता है कि 'वही प्रकृति, अन्तरिक्ष ग्रहो और तारोको तथा विधि को जीतनेकी क्षमता रखता है।' इस प्रकार कवि कभी प्रसादात्मक और कभी विषादात्मक दृष्टिकोण हमारे सामने उपस्थित करता है। उसने शास्त्रकी विजयोका यश गाया है। साथ-साथ मनुष्यको यह चेतावनी भी दी है कि वह यन्त्रोंका दास न हो जाए—

मानवन् यंत्रत्तिन्टॅ निर्मातावाकाम्, यंत्र—
मावरुतवन्; स्वयं तीर्त यांत्रिकशक्ति
इन्नु मानवात्माविन् मारिल् निम्मलरश्मि—
तॉम्मुयर्त्तुवान्—कषिङ्ङॉकिला मनुष्यत्वम्

[मनुष्य यन्त्रोंका निर्माता है, पर कहीं वह स्वयं यन्त्र न हो जाए। मनुष्य द्वारा ढली हुई यन्त्र-शक्ति आज मनुष्यकी आत्माके वक्ष पर खड़ी होकर गरज रही है। अगर मानवता ऊपर उठाई जा सके तो....]

कुरुपजीकी प्रेम विषयक कविताओंको कई श्रेणियोमे रखा जा सकता है। कुरुपजीके प्रकृति प्रेम, दाम्पत्य प्रेम, मानवता-प्रेम आदिका उल्लेख ऊपरके प्रसंगोंमे यत्र-तत्र किया गया है। यहाँ उनके द्वारा वर्णित आध्यात्मिक प्रेमकी ही चर्चा की जा रही है। खण्ड-प्रकृतिके मानवीकरण और उसके प्रति व्यक्त तादात्म्यने ही कुरुपजीको आध्यात्मिक प्रेमकी ओर उन्मुख किया। क्षुद्र तथा निर्जीव समझी जानेवाली वस्तुओमे भी जब हम उन्ही प्राणोको देख लेते है जिनके हम स्वयं स्वामी है, तब स्वाभाविक रूपसे हम सोचने लगते है कि क्या य दोनों प्राण समान ही है, क्या कोई ऐसी शक्ति है, जिसने हममें और इन चीजोंमे जान फूंक दी है, और फिर हम दर्शनकी सहायता से इस निर्णयपर पहुँचते है कि सबका सञ्चालन करनेवाली एक ही विभूति है। इसी शक्तिका बोध ही आध्यात्मिक प्रेमका विषय है। यह कुछ-कुछ रहस्यात्मक है और गूँगेके गुड़की तरह वर्णनके परे है। इसका अनुभव ही किया जा सकता है। दर्शनमे जीवात्मा और परमात्माकी एकता बुद्धि द्वारा प्राप्त होती है। दार्शनिक क्षेत्रके इसी बौद्धिक रहस्यवादकी भावात्मक अभिव्यक्ति ही काव्यका आध्यात्मिक प्रेम है। काव्यमे अक्सर दाम्पत्य प्रम द्वारा ही इसका चित्रण किया जाता है और रागात्मक सम्बन्धका वर्णन ही पाया जाता है। जिस परमात्मा रूपी प्रियतमसे बिछुडकर जीव मर्त्यलोकमे भटकने आया। उससे जब मिलन होता है, तब दोनो एक दूसरेमे अभेद रूपमे विलीन हो जाते है। कुरुपजी अक्सर, प्रतीको द्वारा ही आत्मा-परमात्माके प्रेममय सम्बन्धका वर्णन करते है। 'पुष्पगीत' (सा. कौ.–III) मे पुष्प और आकाश ही क्रमश: जीव और ईश्वरके प्रतीक है। 'वनपुष्पम्' मे यह अलौकिक प्रेम वन पुष्प और रूप हीन शाश्वत, जगत प्राण रूप पवनके प्रतीकों द्वारा वर्णित है। 'पुष्युट पाट्टु' (नदीका गीत) और 'हिमानी' मे नदी तथा हिम और समुद्र तथा सूर्य ही आध्यात्मिक प्रेम के विस्तारमे कविके साधन रहे। 'सूर्य-कान्ति' के 'अन्वेषणम्' मे जीवात्माका प्रतीक वायु प्रियतम है और परमात्मा प्रियतमा। यही सूफी कवियोकी भी परम्परा है। 'रादिन्ट्‌ पाट्टु' '(रातका गीत'—'सूर्यकान्ति') मे आकाश ही प्रियतम है जिसकी श्रीयुत छातीमे रात अपना सिर रखे झुक जाती है। इसी प्रकार 'पंकजगीत' (सू. का.) मे कमल और सूर्य द्वारा आध्यात्मिक प्रेमका सकेत किया गया है। 'साक्षात्कारम्' (नवातिथि) और 'विश्व दर्शनम्' मे कवि इस प्रतीक पद्धतिको छोड़ देता है और अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोको बिना किसी दुराव-छिपावके सीधी भाषामे प्रकाशित करता है।

'विश्व दर्शनम्' मे अपनेको सब कुछ समझने और गर्व करनेवाले मानव-द्वारा पकड़में न आनेवाली उस परम चैतन्यको प्रणाम किए जानेकी कथा वर्णित है।

अपनी निस्सारताका उसे अनुभव होता है और वह विनम्र होकर इस प्रकार संसारके आदि-कारण रूप उस शक्तिका यशोगान करता है—

वन्दनं सनातनानुक्षण विकस्वर—
सुन्दरप्रपंचादिकंदमां प्रभावमे।

[सनातन और अनुक्षण विकास प्राप्त होनेवाले सुन्दर संसारके आदि मूलरूप प्रभाव, तुझे प्रणाम है।]

इस तरह मानवकी सिद्धियोंका गायक कवि यह समझने लगता है कि ये सिद्धियाँ कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हों, मनुष्यके अस्तित्वकी सार्थकता उस अपरिमेय विभूति की शरण प्राप्त करनेमे ही है। यह नही कहा जा सकता कि कुरुपका आध्यात्मिक प्रेम 'सायुज्य' की अवस्थाको प्राप्त हो गया है। लेकिन उस शक्तिके पूर्ण साक्षात्कार से कवि की जिज्ञासा जाग्रत हुई है। अब दोनोंका मिलन ही शेष रह गया है। इसलिए कवि गाता है—

चिन्मयन् मकन् कुञ्ञिवा तुरन्नप्पोळ् धन्य-
जन्मयामॉरु गोपि यी महाविश्वाकारम्
भीकरमनोहरं दर्शिच्चु हर्षाश्चर्य—
मूकमाच् क्षणं निन्नु पोयिपो, लतुपोले,
ऍन्निले विवशयां जिज्ञास निल्पू, पक्षे
मुन्निलिक्काणुं सत्यं मूटॉल्लॅअर्थिक्कट्टे।

[जब चिन्मय पुत्रने अपने छोटे मुँहको खोल दिया तब धन्य जन्मा एक गोपीने विकट-मनोहर इस महान विश्वके आकारको देख लिया और एक क्षण तक हर्ष और आश्चर्यसे मूक ही खड़ी रही, ऐसा सुना जाता है। उसी प्रकार मेरी विवश जिज्ञासा खड़ी है—सामने दिखाई देनेवाला यह सत्य कभी छिप न जाए—यह मेरी प्रार्थना है।]

कुरुपके देशाभिमान और देशप्रेमके बारेमे एक समालोचकने कहा है—"वे गत पीढीके एक देशाभिमानी कवि है, साथ-ही-साथ वर्तमान पीढ़ीके एक क्रान्तिवादी कवि होना भी चाहते है।.....तो भी उनकी कल्पना एक ही लक्ष्यकी ओर उड़ जाती है वह लक्ष्य है मानवता। कुरुपकी कविताका जन्म और विकास गाँधी युगमें ही हुआ है। गाँधीजीकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयताको लिए हुए थी। श्री कुरुपने केरलके उज्ज्वल अतीतका और वर्तमान दयनीय अवस्थाका वर्णन किया है 'तिरुनावाच' (वह जगह जहाँ बारह वर्षमे एक बार देशवासियोके प्रतिनिधि जमा होकर अपने सम्राटको चुनते थे) 'अषिमखत्तु', 'पाटुन्न कल्लुकळ' आदि कविताओंमें "तप्पॉङङल' में द्रविड़ संस्कृति और राज लक्ष्मीका वर्णन है। 'जावयोडु' मे कविने एशियाई सभ्यता का विवेचन इन शब्दोंमें किया है—

आरॅयुं पेटिक्कातॅ, यारॅयुं पेटिप्पिक्का—
तारॅयुं पोले प्राचि तलपॉक्कुम्नु ताने।
स्नेह त्तालतिथिक्लेक्कातिथेयरॅ प्पोलॅ
गेहत्तिल् वाषार्वॅन्नुं ; पूर्वदिक्कुदारयाम्।

[बिना किसीसे डरे और किसीको डराये, प्राची दूसरोकी ही तरह आप ही आप सिर ऊँचा कर रही है। यहाँ अतिथियोको आतिथेयोकी ही तरह प्रेमसे घरपर रहनेका अधिकार है, क्योकि पूर्व दिशा अति उदार है।]

'भारतेन्दु (इतळुकळ्) मे गाँधीजीके निधनकी और 'ओर्मिक्कुन्नुवो' (याद करते हो क्या ?) मे उनकी दण्डी यात्राकी स्मृतियाँ अकित है।

गाँधीजी ही भारतीयोकी आकांक्षाओकी प्रतिमूर्ति थे। अतः उनकी जीवनी और उनके सिद्धान्तोके चित्रण द्वारा ही भारतीय भाषाओके कवियोंने भारतकी वर्तमान राष्ट्रीयताकी विवेचना की है। कुरुप भी इसके अपवाद नही है। 'निमिषम' के 'वन्दनम्' मे गाँधीजीका किसानके रूपमे चित्रण हुआ है :—

भौतिक, माध्यात्मिक मी महासिद्धान्तङ्ङळ
नीतियिल् योगात्मक नुकत्तिन् स्वयं पूट्टि
एकनायुष धर्म कर्षक, तवाकारम्
लोकमद्भुतोत्फुल्ललोचन दर्शिक्कुन्नु।
केवल महिंसतन कॉषुवल्लाते, लोक-
पावन, भवानिल्ल; सत्यमाणतिन् मूर्च्च।

[भौतिक, आध्यात्मिक—इन दो सिद्धान्तोंको योगात्मक जुएमे जोतकर, हे धर्म कृषक, जब तुम हल चलाते हो, तब ससार तुम्हारी मूर्तिको आश्चर्य-चकित आँखोंसे देखता रहता है। हे लोकपावन, तुम्हारे पास अहिसाके फालको छोड़कर और कुछ नही है और उस फालकी धार है सत्य।]

उन्नीसवी और बीसवी शताब्दीके साम्यवादी क्रान्ति और विज्ञानके विकास ये दो वरदान है। कुरुपकी कविताओंमें इन दोनोंका प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने दीन-दुःखी एव दलित लोगोकी बुरी अवस्थाका वर्णन करते हुए धनिकोंको युग-परिवर्तनके बारेमे चेतावनी दी है। अन्तरिक्ष यात्रामे रूसकी विजयोकी भी उन्होंने मुक्त कण्ठसे प्रशसा की है :—

अन्तरीक्षत्तिन् नित्यबदमां पुरंकोट्ट
तन् तषुतवाङ्मनो गोचर प्रभावत्ताल्,
अत्र लाघवत्तोटॅ तुरन्नु मनुष्यन्टॅ
जैत्रयात्रक्कायिता सोवियट्टिरङ्ङुन्नु।
ऍन्त, नात्मकदियो रव्य ? ञाना नाटिन्टॅ—
यंतरंगत्तिल् पोलॅ थात्मीय चैतन्यङ्ङळ्

अन्यराज्यत्तिन् हृत्तिलेङङमे नवोन्मेष--
जन्य कौतुकं नृत्तं चॅयवतु काण्मीलल्लो।
तुटलुं विलङङुमाय् मर्त्यन्टॅयात्मावङङु
तटविल् किटक्कुन्नु वॅन्नाक्कुं स्वतंत्ररे,
निङङळॅब्बन्धिक्कुन्नोर न्तरीक्षत्तिन् कोट्ट
यॅङङनॅ तुरक्कुवानतिनुसाकिक्कुन्न।

[अन्तरिक्षके हमेशाके लिए बन्द पड़ परकोटेकी अर्गला आवाङमनोगोचर प्रभावसे रूस खोल देता है--बड़ी आसानीसे और मानवकी जययात्राके लिए निकल रहा है। क्या रूस अध्यात्मवादी नहीं है? उस देशके हृदयमे नवोन्मेष जनित कौतुकसे जितनी आत्मचेतनाएँ नाचती हुए दिखाई देती है, उतनी और किसी देशके हृदयमे नही दिखाई देती। मनुष्यकी आत्मा वहाँ जजंजीरों और हथकड़ीयोंमे जकड़ी हुई है--इस तरह घोषणा करनेवाले स्वतन्त्र लोगो! जिस अन्तरिक्षका किला तुम्हें बाँधकर रखता है, उसे वह कैसे खोल सकता है!]

किसी-किसी प्रसगमे उन्होने चन्द्र लेखाकी तुलना भी हॅसियोंसे की है। इसपर रूढ़िवादी समालोचकोंने उन्हें समष्टिवादी घोषित कर दिया। असलमे बात तो यह है कि मौलिक रूपमे कुरुप कम्युनिस्ट नहीं है। 'चॅकतिरुकळ' के सम्बन्धमे जब किसीने कहा कि इसपर रक्तका रग अधिक चढा हुआ है, तब कुरुपने जवाब दिया कि यह मेरे ही हृदयके रक्तसे रञ्जित है। कुरुप आदिसे अन्ततक मानवतावादी लेखक है। श्री गुप्त नायर इनके सम्बन्धमे कहते है--"मनुष्य स्नेहके कारण साम्यवादसे प्रभावि हो कुरुपने दलितों और मजदूरोंके उत्कर्षका पक्ष समर्थन किया। लेकिन उन्होने 'जला दो, भून दो' आदि नारा नही लगाया।"

जी. कुरुप देश-विदेशके सभी आन्दोलनो-परिवर्तनो तथा होनेवाली क्रान्तियोसे वहीं तक प्रेरणा प्राप्त करते है, जहाँ तक उससे मानव समाजका कल्याण हो और उससे भावी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त होता हो। उनकी राष्ट्रीयता अनुदार नही बल्कि अन्तराष्ट्रीयताके उदार भावोसे परिपूर्ण है। शास्त्रीय तत्वोकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही उनकी कवितामे पाई जाती है। समाजवाद, साम्यवाद, समष्टिवाद राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता आदि सिद्धान्तोंका समर्थन हम यत्र-तत्र उनकी कविताओमे पा सकते है। विज्ञानसे भी वे काफी प्रभावित है। कालसे सम्बन्धित उनकी भिन्न-भिन्न रचनाओंमे कालकी अनिवार्यता, उसकी निरन्तर चलनेवाली गतिके वर्णनके साथ-साथ मनुष्यकी निस्सारताका भी वर्णन है। 'निमिष' मे विकास शील अन्तरिक्ष और बुझते जानेवाले सूर्यका उल्लेख मिलता है तो 'मेघगीतम्' मे मेघका वाष्प, से उत्पन्न होने (घनीभूत लोकवाष्पम्) और भूमिका सूर्यके चारों ओर घूमने ("भूमि देवि चॅय्युन्नू नित्य शयन प्रदक्षिणम्"--भूमिदेवी तुम्हारे-सूर्यके चारों

और शयन प्रदक्षिणा करती है।) की प्रक्रिया वर्णित है। चन्द्रकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे वैज्ञानिकोंका यह मत है कि पहले पहल वह भूमिका ही एक हिस्सा था और बादको उससे टूटकर अलग हो गया। 'अम्मामन् आशीर्वदिक्कुन्नु' में इसीकी काव्य-मय अभिव्यक्ति है। इस प्रकार खोज की जाए तो और भी कई वैज्ञानिक तत्वो और तथ्योंका उल्लेख हम उनकी कविताओंमे पा सकते है।

कुरुपकी भाषा बहुत मँजी हुई और परिमार्जित है। उनकी भाषामे देशज या ग्राम्य पदोंका बिलकुल अभाव है। आरम्भ कालकी कुछ कविताओंमे संस्कृत छन्दों और संस्कृत व्याकरणके अनुसार गढ़ हुए लम्बे-लम्बे समस्त पदोका प्रयोग पाया जाता है।

अप्रस्तुतोके विधानमे भी एक विशेषता पाई जाती है। प्रारम्भ कालमे उनकी वाणी वाचाल थी और वर्ण्यके विषयमे विशेषणोंकी माला-सी बन जाती थी। कहनेके लिए जब कुछ नहीं होता तभी हम वाग्जालमे पड़ जाते है। उपमाओं, उत्प्रेक्षाओ, रूपकों और उल्लेखोकी शृंखला उनकी बादकी रचनाओंमे कम पाई जाती है। उनकी जगह चुने हुए समर्थ शब्दोंमे गहरे भावोकी सीधी अभिव्यक्ति ही दिखाई देती है। धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक कहनेकी प्रवृत्तिके स्थानपर सक्षेपमे कहनेकी प्रवृत्तिकी ओर इनका अधिक झुकाव हुआ।

भावोके ऐसे स्पष्ट अभिव्यञ्जनके लिए, जिससे कि पाठक उनका सच्चा रूप आत्मसात् कर सके, जब शब्द अयोग्य सिद्ध हो जाते है तभी कवि प्रसिद्ध एवं परिचित प्रतीकोको काममे लाते है। ये प्रतीक कविसे या तो चेतन या अवचेतन मन द्वारा प्राप्त निजी अनुभवोसे या मानव-समाजके अनुभवोसे चुन लिये जाते है। दूसरे प्रकारके प्रतीक ही सार्वजनिक होते है और भावोके स्पष्टीकरणके अधिक योग्य भी हो सकता है कि कविकी अपनी अनुभूतियोसे प्राप्त प्रतीक उतने प्रसिद्ध या प्रचलित न हों, उस दशामे प्रतीक-शैलीका स्पष्टाभिव्यक्तिवाला उद्देश्य ही असिद्ध हो जाता है। कहना पड़ता है कि कुरुपकी रचनाओमे दोनो प्रकारके प्रतीक पाये जाते है। अधिकाश प्रतीक प्रसिद्ध एव प्रचलित ही है। कमल और सूर्य, पुष्प और भ्रमर, नदी और समुद्र आदिका कवि-सकेत-जनित सम्बन्ध भारतमे इतना प्रसिद्ध है कि उनके द्वारा आध्यात्मिक प्रेमकी जो अभिव्यक्ति कुरुपकी कवितामे हुई है, उसके समझनेमे बुद्धिको व्यायाम करनेकी आवश्यकता नही है। कुरुपने अपने व्यक्तिगत अनुभवो और कल्पनासे प्राप्त कुछ नए प्रतीकोंका भी प्रयोग किया है, "निमिषम्" ऐसे कई नए प्रतीक लाये गए हैं।

कुरुपकी लोकप्रियताके कारणोंको बताते हुए बालकृष्ण पिल्ला यों कहते हैं – "कुरुपकी भाषामे रीतिकी विशेषता और प्रकृति-निरीक्षणमे प्रकटित सत्य-दर्शनके कौशलने रूढ़िवादी लोगोंको प्रसन्न किया। उनके आदर्शोंकी महत्ता, सच्चाई और समाजके पर्यवेक्षणमें दिखाए हुए सत्य-दर्शनके प्रावीण्यने नये विचारवालोंको मुग्ध कर दिया। इसीमे कुरुपके दोनों दलोंकी आँखोंके तारे बन सकनेका मर्म निहित है।"

● ● ●

जी. शंकर कुरुप

[काव्य-सञ्चय]

१. पुष्प गीतम्

श्यामसुन्दरमायि राजिक्कुमनाद्यन्त,--
व्योममे, विश्वव्यापियाय निन् हृदयान्तम्
प्रेमशीतळमायि त्तुळिक्कुं मञ्ञान् तुळ्ळि
कोळ्मयिर् कॉण्टेट्टिट्ट, पूर्णकाममिप्पुष्पम् ।
सागरं निरक्कुन्न कैयिनिल्लल्लो पञ्ञाम्
वेगमीयळुक्किनुं वेणुन्न निरवेकान् ।
पेलवं दलपुटं, भगवन, भवद्दया--
लोलशीकरं ताङिङल्लामोद भारानम्रम् ।
नीयारा लॅट्टुत्तालु मित्तुळ्ळि तेजोराशे,
पोयालो वॅरुं मण्णलॅङङानुं दौर्ब्बल्यत्ताल् ।
तावकांगश्री पच्च पिटिप्पिच्चॉरिक्कुन्निन्-
ताष्वरप्रदेशत्तिल् स्वातंत्र्य चैतन्यङङळ्
नुकर्न्नु नुकर्न्नत्तकौतुकं विटरुवा--
नुणर्वेकुकमूलं धन्य धन्यमाय् त्तीर्न्नेन् ।। १ ।।

मन्दारं तळिर् च्चॅ पॉन् नीराळक्कुट चार्त्तुम्
वृन्दारकारामत्तिल्, रत्न शैलोपान्तत्तिल्,
अणवानाशिक्कुन्नीलत्युग्रातपमाळुं
तृणमंडलाकुल भूविल् ञान् विरिञ्ञावू ।
मामकस्वातंत्र्यत्तिन् स्वच्छमां मुखं स्वर्ग--
मामरनिषल्मूलमाविल मावित्लवल्ली ?
पारतंत्र्यत्तिन् रत्नमंदिरत्तेक्काळ् सौख्यो --
दारमे स्वातंत्र्यत्तिन् पच्चप्पुल्लणिमुट्ट.म् ।
कोमळभवदंगनीलिम् मायिल्लल्ली
हेमशैलत्तिन् पीतकांतितन् तिरत्तल्लाल् ?
मंगलं भवन्मौनगानत्तॅ लोभोद्भ्रान्त--
भृंगत्तिन् मुखस्तुति विस्मरिप्पिक्किल्लल्ली ?।।२।।

१. पुष्प गीत

हे श्याम-सुन्दर होकर चमकनेवाले आदि अन्त-हीन आकाश! विश्वभरमें व्याप्त होनेवाला तुम्हारा हृदय प्रेम-तृप्तिसे जो हिम-बिन्दु छिटका देता है, उससे रोमाञ्चित यह पुष्प पूर्ण काम हुआ। जो हाथ सागरको भी भर देता है, वह इस छोटीसी पेटिकाको भी वेगसे भर दे तो इसमें क्या बड़ी बात है!

लेकिन हे भगवन्! आमोदके भारसे नमित यह पेलवदल तेरी दयाके चंचल कणोंका भार नहीं वहन कर सकता।

हे तेजोराशि! इस बूँदको तू ही वापस ले ले। हो सकता है कि दुर्बलतासे वह मिट्टीमें खो जाय।

तेरे अंगकी शोभासे हरी-भरी इस पहाड़की घाटियोंमें स्वातन्त्र्य और चैतन्यका आस्वाद लेते-लेते खिलनेके लिये तूने जागृति दे दी। इसलिए मैं धन्य हो गया ।।१।।

जहाँ मन्दार वृक्ष अपने पल्लवोंका स्वर्णिम रेशमी छाता सजाता है, देवोंके उस उद्यानमें, रत्न-शैलके उपान्तमें चले जानेकी मेरी इच्छा नहीं है। उग्र तापवाली तृणभूमिपर ही मै खिल जाऊँ।

स्वर्गके वड़े पेड़ोंसे मेरी स्वतन्त्रताका स्वच्छ मुख कलुषित हो जायेगा न ?

परतन्त्रतामें रहकर प्राप्त होनेवाले रत्न-महलोंकी अपेक्षा स्वतन्त्र रहकर प्राप्त होनेवाला तृणावृत आँगन अधिक सुखमय है।

हेम-पर्वतकी पीली कान्तिकी लहरोंसे तुम्हारे कोमल अंगोंका नीला रंग दूर हो जायेगा न ?

लोभसे उद्‌भ्रान्त मधुकरकी चाटुकारितासे तुम्हारा मौन, तथा शुभ गान विस्मृत हो जायेगा न ? ।।२।।

आ रत्नाचलत्तेक्काळ् पॉङिङ निन्नीटुं काल्य–
तारकत्तिनॅप्पोली काट्टु पूविनॅ क्कूटि
नित्यवुं समुत्फुल्लशोभमाय् विटर्त्तुन्नु
स्तुत्यमे भवदीयमेक भावना तत्वम् ।
शोणजिह्वयाल् अत्युग्रान्धकारौघं लोक—
त्राणार्थ नक्किक्तिन्नु तिन्नु नीयाँटुक्कुम्पोळ्,
कट्टिक्काट्टुट्टुत्तॅत्तिक्कुलुक्कि विळिक्कवे,
ञॅट्टि ञानुणर्न्नॅन्नुमत्भुत स्तिमितमाय्
निन्नावू, नवोदयचैतन्यं वहिक्कुन्न
मन्नाळुमानंदत्तिल् मग्नमायनन्याशम्
सौरभं परक्कातॅ सादरस्नेहोदार—
पौरलोचनातिथ्यभाग्यवुं भविक्काते,
ई विनीतमां लज्जाधीरकानन पुष्पम्
ताविटुं निन् लावण्यं तान् नुकर्न्नॅन्नुं पुण्यम्
मातृभूमितन् शुद्ध प्रेमतुन्दिलमाकुम्
मारिटत्तिन्कल् तन्ने मालकर्न्नुतिरन्नावू ! ।।३।।

उस रत्नाचलसे भी ऊपर उठनेवाले प्रभात नक्षत्रकी तरह इस कानन-कुसुमको भी तुम रोज प्रफुल्ल शोभासे खिला रहे हो। तुम्हारा समता -सिद्धान्त प्रशंसाके योग्य ही है।

जब तुम अपनी लाल जिह्वा से उग्र अन्धकार-समूहको लोकके त्राणके लिये चाटते-खाते नष्ट कर रहे हो और जब मन्द पवन पास आकर मुझे जगा रहा है, तब मैं चौंककर, आश्चर्य-चकितसा जाग उठूँ और नवोदयकी चेतनाको वहन करनेवाली भूमिके आनन्दमें मग्न होकर और बिना किसी अन्यकी आशा किये खडा हो जाऊँ।

सौरभको बिना फैलाये, पुरजनोंकी आँखोंके सादर और स्नेहोदार आतिथ्य का भाग्य बिना प्राप्त हुए, यह विनीत और लज्जासे अधीर वन-पुष्प प्रतिदिन तुम्हारे सौन्दर्यका रस लेते हुए, मातृभूमिकी शुद्ध प्रेम-भरी छातीपर ही, बिना पीड़ाके, झर जाए ॥३॥

२. ऍण्ट्ट वेळि

वन्नटुत्तॅन्नो वेळि-मुहुर्त्तं ? पिटक्कायक
सन्नमां हृदन्तमे शांतमायिरुन्नालुम् ।
कालमॅन् शिरस्सिकलणियिक्कयाय् मुल्ल--
भाल, फालत्तिल् चेर्त्तु कषिञ्ञू वरक्कुरि ।
वरणं वरन् मात्र, मासन्न मायि प्पोयी
वरणं ; सनातननियमं लंघिक्कामो ! ॥१॥

हा, विरच्चुपों लोकं नाम मात्रत्ताल्, ञाना
जीवितेशनॅ प्पट्टि. क्केट्टिरिक्कुन्नू पंटे ।
भूविलद्देहं नीट्टुं कै तट्टि नीक्कानिल्ल
जीवितं ; तदिच्चछक्कु तल चाय्क्काने पट्टू ।
कामत्तिन्नलं भावमिल्लॅन्नो ! तत्संदेश-
स्तोमत्तॅयॅत्तिक्कुन्न राप्पकल् प्पिरावुकळ्,
वानिलॅप्पाषुं काणां संचरिप्पतायिट्टु ;
ञानिवट्टयॅ ब्बन्धिच्चीटुवानाशिक्कुन्नु ।
पलरॅप्पाणिग्रहं चॅय्त्तिरिक्कुन्नू पण्टे ;
पल मंदिरत्तिलुमिप्पॉषुं नटक्कुन्नु ।
पति गेहत्तॅप्पूकान् यात्रयाकलुं, बन्धु--
तति तन्, निरर्थाश्रु वर्षवुमिटक्किटे ।
कुटि वॅच्चतिन् शेषं जन्मगेहत्तॅक्काणा--
निटयाक्कुमेकुन्नी लुग्रशासननॅन्नो !
हा ! तिरिच्चिवरॅनिन्नागमि क्कुन्निल्लारु--
मोतिटान् ; अन्त:पुरं नाकमो, नरकमो ! ॥२॥

२. मेरा विवाह

क्या विवाहका मुहुर्त आ गया? क्षीण हृदय, घबरा मत। शान्त हो। कालने मेरे गलेमें कुन्दकी माला पहना दी और भालपर लम्बा तिलक लगाया। अब वरका आगमन ही रह गया है। वरण आसन्न है। क्या सनातन नियमका उल्लंघन हो सकता है?।।१।।

उसका नाम सुनने मात्रसे सारा संसार काँप उठेगा। मैंने पहलेसे ही उस प्राणेशके बारेमें सुना है। जीवन उसके द्वारा बढ़ाये हुए हाथको हटा नहीं सकता। उसकी इच्छाके सामने सिर झुकाना ही पड़ता है। क्या कामको तृप्ति नही? उसके सन्देशोंको पहुँचा देने वाले दिन-रात रूपी कबूतर आकाशमे हमेशा चलते हुए दिखाई देते हैं। मै उन्हे बाँधना चाहता हूँ। उन्होंने अनेकका पाणिग्रहण किया है। अब भी कई घरोंमे गौनेकी बिदाईके अवसरपर बन्धुजनोंके निरर्थक अश्रुओंकी वर्षा हो रही है। क्या उग्र शासनवाले वे ससुराल-प्रवेशके बाद मैकेको फिरसे देखनेका अवसर नहीं देते? हाय! हाय!! वहाँकी हालत कहनेके लिए वहाँसे कोई वापस नही आता। न जाने अन्त:पुर स्वर्ग है या नरक! ।।२।।

मामकहृदन्तत्तिल् माट्ट. ॉलि क्कॉण्टीटुन्नु
ण्टामन्दं समीपिक्कुं पति तन् पद-न्यासम् ।
काल् विनाषिक कूटिञ्ञान् पिरन्नाॅ रीवीट्टिल्
मेविटान् कषि ञ्ञॅ किल्—इत्र वेगमो यात्र !
मेनि मे विरक्किल्ल, चुण्टिण चलिक्किल्ल,
ग्लानि वन्नुदिक्किल्ल, विळरिप्पोकिल्लास्यम् ।
समयं वरुन्नेरं सर्वशक्तमाक्कैयिल्
मम जीवितं क्षुद्रं सस्मितं सर्म्प्पिक्कुम् ।।३।।

स्नेह पूर्णमायॅन्नॅ नोक्कि वीर्प्पितुं जन्म—
गहमे, पॉङङुन्निल्ल यात्र चोदिप्पान् शब्दम् ।
इन्नु निन् सौन्दर्यत्तॅ प्पूर्णमाय् ञ्ञान् काणुन्नि—
तिन्नु निन् प्रेमं मूलं मन्मनं पिळरुन्नु ।
विरहत्तिलल्लातॅ लावण्यं समग्रमाय्
निरवद्यमायिट्टु काणुवान् कषिवीला ।
प्रेमत्तिन् तिळक्कं कण्टतु चॅन्नॅटुक्कायविन्
भीममां खड्गत्तेक्काळ् मूर्च्चयेरियतत्रे ।
उद्रसं निषलुकळन्योन्यं पुलिक पुलिक
निद्र चॅयतीटुं पच्चप्पट्टान्नें निन् तोट्टत्तिल्
तावुमौत्सुक्यत्तोटॅ नाळॅयुं पुलरियल्
पूवुकळ् जलार्द्रमां कणतु रन्नय्यो नोक्कुम् ।
अत्र वन्निरिक्कारुण्टवयाय् संसारिप्पा—
नॅत्रयुं मॅलिञ्ञु नीण्टुळ्ळॉरु रूपं सौम्यम् ।
अषलालव परञ्ञी टुमन्योन्यं नोक्कि :
निषलायिरुन्नॅन्नो स्नेहधारमा रूपम् ।। ४।।

———

मन्द-मन्द गतिसे पास आनेवाले पतिकी आहट मेरे हृदयमें प्रति-ध्वनित हो रही है। हाय! अगर थोड़ा और समय अपने इस जन्मगृह में रहनेका हो सकता तो---! क्या इतनी जल्दी यात्रा करनी है? मेरा शरीर नहीं काँपेगा, ओठ भी नहीं हिलेंगे। समयके आनेपर न मुझे ग्लानि होगी और न मुख ही पीला होगा। उस सर्व शक्तिमानके हाथोंमें मैं अपना क्षुद्र जीवन हँसते-हँसते अर्पण करूँगा ।।३।।

स्नेहपूर्ण होकर मेरी ओर देखते-देखते लम्बी साँसें लेनेवाला मेरा जन्मगेह बिदा करनेके लिए आवाज नहीं उठाता। आज मैं तुम्हारे सौन्दर्यको पूर्ण रूपसे देखता हूँ। तुम्हारे प्रेमसे आज मेरा मन फट रहा है। विरहकी दशाको छोड़कर और कहीं समग्र और निरवद्य सौन्दर्य दिखाई नहीं देता। प्रेमकी चमकको देखकर उसकी ओर मत आकृष्ट हो। भयंकर खड्गसे भी वह तेज है। जहाँ बड़े आनन्दसे छायासें एक दूसरेका आलिंगन करती हुई सो जाती हैं उस हरे रेशम वाले तुम्हारे उद्यानमें कल सबेरे भी बड़ी उत्सुकतासे सुमन अपनी जलसे आर्द्र आँखोंको खोलते हुए देखेंगे। बहुत पतली, लंबी और रम्य एक आकृति उनसे बातचीत करनेके लिए वहाँ आ बैठा करती है। वे बड़े दुःखसे एक दूसरेसे कहेंगे—क्या स्नेहका आधार वह रूप-छाया है?।।४।।

३. इन्नु ञान् नाळॆ नी

इन्नु ञान् नाळॆ नी इन्नु ञान् नाळॆ नी"
इन्नुं प्रतिध्वनिक्कुन्नितॆ न्नोर्म्मयिल् ॥१॥

पातवक्कत्ते मरत्तिन् करि निषल्
प्रेतं कणक्के क्षणत्ताल् वळरवे,
एत्रयुं पेटिच्चरण्ट चिल शुष्क,
पत्रङ्ङळ् मोहं कलर्न्नु पतिक्कवे,
आसन्नमृत्युवां निश्चेष्ट मारुतन्
श्वासमिटक्किटक्काञ्ञु वलिक्कवे,
तारक रत्न खचितमां पट्टिनाल्
पारमलंकृतमाय विण्पॅट्टियिल्
चत्त पकलिन् शवं वच्चॅट्टुप्पति-
नात्तमौनं नालु दिक्कुकळ् निल्क्कवे,
तन् पिताविन् शव प्पॅट्टिमेल् चुंबिच्चु
कम्पित गात्रियायंति मूर्च्छिक्कवे,
जीवितं पोलॅ रंटट्टुवुं काणात्तॉ--
रा वषियिन्कल् तनिच्चु ञान् निन्नुपोय्।
पक्षिकल् पाटियि, ल्लाटियिल्लालिल,
इक्षिति तन्ने मरविच्च पोलॅयाय् ॥२॥

३. आज मैं, कल तू

आज मैं, कल तू—यह मेरे स्मरणमें आज भी प्रतिध्वनित हो रहा है ।।१।।

जब सड़कके किनारेके वृक्षोंकी छाया प्रेतकी तरह लम्बी होती जाती थी, जब अतीव भयभीत कुछ सूखे पत्ते बेहोश होकर झड़ रहे थे, जब आसन्न मृत्युवाला, चेष्टा-हीन मारुत कभी-कभी लम्बी साँस ले रहा था, जब नक्षत्र-रूपी रत्नोंसे जड़ित रेशमी कपड़ेसे अलंकृत आकाश-वाली पेटीमें मृत दिनकी लाश रखे चारों दिशाएँ मौन खड़ी थीं, जब अपने पिताकी शव-पेटिकाको चूमते हुए कम्पित सन्ध्या मूर्च्छित हो रही थी, तब मैं उस पथपर अकेला खड़ा रहा, जिसके दोनों छोर, जीवनके समान दिखाई नहीं देते थे। चिड़ियोंने गाया नहीं, और पीपलके पत्ते हिले नहीं। ऐसा मालूम होता था मानो यह भूमि ही सुन्न हो गई हो ।।२।।

अन्तिकत्तुळ्ळोरु पळ्ळियिल् निन्नुटन्
पॉन्ति 'णां' 'णां'—एन्न दीन मणिस्वनम् ।
रंटायिरत्तोळ माण्टुकळ्क्कप्पुर—
त्तुण्टायॉरा महात्यागत्तॆ यिप्पॉषुम्
मूकमाणॆ ङ्ङिकिलुं मुच्चत्तिल् वर्णिक्कु
मेक मुखमां कुरिशिनॆ मुत्तुवान्
आरालिरङ्ङि वरुं चिल 'मालाख'
माराय् वरां कण्ट वॆण्मुकिल् त्तुंटुकळ
पापं हरिच्चु पारिन्नु विण्णेरुवान्
पात काणिक्कुं कुरिशे, जयिक्कुक !   ॥३॥

आवषिक्कप्पोळॉ रुदरिद्रन्टॆ निर्
ज्जीवमां देहमटक्किय पॅट्टि पोय्
इल्ला पॅरुम्पर, शुद्रूयां विश्वस्त
वल्लभ तन्नुटे नॅञ्चिटि स्पॅन्निये ;
इन्न पूवर्ष विषादं किटन्नल—
तल्लुन्न पैतलिन् कण्णुनी रॅन्निये !
वन्नु तरच्चिच तॅन् कण्णिला पॅट्टिमेल्
निन्नु मारक्षरं "इन्नु ञान् नाळॆ नी"
ऑन्नु नटुङ्ङि ञानानटुक्कं तन्नॆ
मिन्नुमुडुक्कळिल् दृश्यमाणिप्पॉषुम् ॥४॥

उस समय पासके गिरजाघरसे घण्टेकी टन-टन-टन ध्वनि सुनाई पड़ी।

करीब दो हजार साल पहलेके उस त्यागका, मूक फिर भी मन्द्र-स्वरसे वर्णन करनेवाले उस एकाग्र क्रॉसको चूमनेके समागत देवदूत की ही तरह मेघोंके खण्ड दिखाई दिये। पापको दूरकर भूमिको स्वर्गका रास्ता दिखा देने वाले 'क्रॉस' तेरी जय हो।।३।।

उस समय उसी रास्तेसे एक शव–पेटिका निकली जिसमें किसी गरीबका निर्जीव शरीर रखा हुआ था। विश्वस्त पत्नीके हृदयकी धड़कनके सिवा कोई नगाड़ा नहीं बजता था। जिसमें विषाद लहराता था उस बच्चेके आँसुओंके अलावा कोई सुमन-वर्षा भी नहीं थी। उस पेटीपरसे निकले छह अक्षर मेरी आँखोंमें समा गये—"आज मैं कल, तू।" मैं एकदम काँप गया; वही कम्पन अब भी नक्षत्रोंमें दिखाई दे रहा है।।४।।

४. नक्षत्र गीतम्

ऍरियुं स्नेहार्द्रमामॅन्ट् जीवितत्तिन्ट्
तिरियिल् ज्वलिक्कट्टे दिव्यमां दुःखज्वाला ;
ऍंकिलुं, नॅट्टुवीर्प्पिन् धूमरेखयाल् नूनम्
पंकिल माक्किकल्लॅन्नुं देवमार्गमां वानम् ।
एंकिलुं मदीयात्म व्यापियामूष्मावाक्कुम्
पंकिटिल्लाजन्मांतं ञानतिलॅरिञ्ञालुम् ।।१।।

एन् चितयिंकल तन्नॅयाणु ञा नॅन्नालेतो
पुंचिरित्तिळक्कत्तॅ प्पथिकन् दर्शिक्कुन्नु ।।२।।

वीणु ञानाकाशत्तिन्नत्यगाधतयिंकल--
त्ताणुपोयेक्कां मूर्च्छाधीन मा, यल्लॅन्नाकिल्,
भस्ममायेक्कां; तीरॅ क्षुद्रनामॅन्नॅ प्पिन्नॅ
विस्मरिच्चेक्कां कालं--ऍन्नालुमितु सत्यम् ;
जीवितमॅनिक्कॉरु चूळयायिरुन्नप्पोळ्
भूविना वॅळिच्चत्ताल् वॅण्म ञानुळवाक्कि ।।३।।

४. नक्षत्र गीत

स्नेहसे आर्द्र होकर जलनेवाली मेरे जीवन रूपी बत्तीसे दिव्य दुःखकी ज्वाला प्रज्वलित हो जाए ! फिर भी मैं लम्बी साँसोंकी धूम रेखासे देवोंके मार्ग आकाशको गन्दा नहीं करूँगा । मै अपनी आत्मामें व्याप्त होने वाली गरमी जीवनके अन्त तक किसीके साथ बाँट नहीं लूँगा, चाहे मैं उसमें दग्ध ही हो जाऊँ ।।१।।

मैं अपनी ही चितामें हूँ ; फिर भी पथिक उसमें किसी स्मितकी झलक को देख लेता है ।।२।।

हो सकता है कि आकाशकी असीमतामें बेहोश होकर मैं गिर जाऊँ, भस्म हो जाऊँ और काल मुझ क्षुद्रको भूल जाए, फिर भी सच तो यह है कि जब जीवन मेरे लिए एक भार था तब मैंने उस प्रकाशसे भूमिको धवल कर दिया ।।३।।

५, सागर गीतम्

शान्तमंबरं निदाघोष्मळस्वप्नाक्रांतम्
तान्तमारब्ध क्लेशरोमंथं मम स्वान्तम् ।।१।।

दृप्तसागर, भवद्रूपदर्शनालब्धं--
सुप्तमॅन्नात्मावन्तर् लोचनं तुरक्कुन्नु ।
नीयपारतयुटॅ नीलगंभीरोदार--
च्छाय ; निन्नाश्लेषत्ता लॅन्मनं जृंभिक्कुन्नु ।।२।।

क्षुद्रमामॅन् कर्ण्णत्ताल् केळ्क्कुवानावात्तोरु
भद्र नित्यतयुटॅ मोहन गानालापाल्
उद्रसं फणोल्लोल कल्लोलजालं पॉक्कि
रौद्र भंगियिलाटि निन्नीटुं भुजंगमे,
वानं तन् विशालमां श्यामवक्षास्सिल् क्कॉत्ते--
ट्टानंद मूर्च्छाधीन मङङनॅ निल कॉळ्वू ।।३।।

तत्तुकॅन्नात्माविकल् क्कॉत्तुकॅन् हृदंतत्तिल्,
उत्तुंगफणाग्र त्तिलॅन्नॅयं वहिच्चाप्पॉम् ।।४।।

नीरदलतागृहं पूकियिल्लुष् तन्ति
नीरवमिरिक्कुन्नु रागविभ्रममेंति ।।५।।

हृदयं द्रविप्पिक्कुमेतॉरुज्ज्वल गान--
मुदल्लयं भवानालयिक्कुन्नू स्वैरम् ? ।।६।।

कनक निचोळ मून्नानग्नोरस्साय् मेवु--
मनवद्ययां सन्ध्यादेवितन् कपोलत्तिल्
क्षणमुंटॉलिक्काराय् मिन्नुन्नु तारा बाष्प--
कणमॉन्ननिर् वाच्य नव्य निर्वृति बिन्दु ! ।।७।।

५. सागर गीत

शान्त आकाश निदाघ कालके ऊष्म स्वप्नोंसे आक्रान्त है। मेरे हृदयने थककर क्लेशोंको बार-बार चबाना शुरू किया है ॥१॥

हे दर्पपूर्ण समुद्र, तुम्हारे रूपके दर्शनसे मेरी अर्द्ध सुप्त आत्मा अपना आन्तरिक नेत्र खोल रही है। तुम अपारताकी नील, गम्भीर और उदार छाया हो। तुम्हारे आलिगनसे मेरा मन विजृम्भित हो रहा है ॥२॥

जो मैं अपने क्षुद्र कानोंसे सुन नहीं सकता, भद्र नित्यताके उस मोहक गानके आलापसे आनन्दित होकर अपने फन रूपी उत्तुङ्ग तरंगोंको ऊँचा कर भीषण रमणीयतासे नाचनेवाले भुजंग, आकाश भी अपने विशाल वक्षमें टीस (डंक खाते हुए) और आनन्दकी मूर्च्छाका अनुभव करते हुए ज्यों का त्यों स्थित है ॥३॥

मेरी आत्मामें खेलो, मेरे हृदयको काटो; अपने ऊँचे फनोंके अग्र भागपर मुझे वहन करो ॥४॥

मेघके लता-गृहमें प्रवेशकर अब सन्ध्या रागका विभ्रम लिए शान्त बैठी है ॥५॥

हृदयको पिघलानेवाला, लय-भरा कौन सा उज्ज्वल गान तुम निश्चिन्त होकर गा रहे हो? ॥६॥

स्वर्णिम पर्देके खिसकनेके फलस्वरूप किञ्चित नग्न वक्षवाली, निष्कलंक सन्ध्या देवीके कपोल पर नक्षत्र रूपी एक आँसू-कण अवर्णनीय और नई निर्वृत्तिका एक विन्दु प्रवाहोद्यत होकर चमक रहा है ॥७॥

अङ्ङल् निन्नरिञ्ञु ञान् पूर्णमामात्माविकल्
तिङ्ङट्टुमनुभवं पकरुं कला शैलि ।
नित्यगायक, पठिप्पिक्कुकॅन् हृत्स्पन्दत्तॅ-
स्सत्यजीविताखंड गीतित्तिन् ताळक्रमम् !
जीवितं गानं, कालं ताळं, आत्माविन् नाना
भावमोरोरो रागं; विश्वमंडलं लयम् ! ।।८।।

अम्पिळिच्चषकत्तिल् नुरयुं दिव्यानंदम्
अम्पलैंतिक्कॉटत्ति शुक्लपंचमि मन्दम् ।
आनतमुखियुटॅ नीलभ्रू निषलिच्च
पान भाजनं, वॅम्पु करत्ताल् स्वयं वाङ्ङि,
फेनमंजुळस्मितं कलर्न्नु नुकर्न्नन्य--
ज्ञानमॅन्निये पाटुं हृर्ष जृंभित सत्व,
भावत्ताल् तरंगायमाणमां विरिमार-
त्तावधु तल चाच्चु निल्क्कुन्नु लज्जामूकम्
अल्लणिक्कुषलितन् श्लथ वेणियिल् निन्नुत्--
फुल्लमामॉरायिरं मुल्लमॉट्टुकळिता
बिंबितं ताराजालंमाविल्ल नूनं निन्टॅ
कम्पित स्निग्धोरस्सिल् क्कॉषिञ्ञुल्लसिक्कुन्नु ।।९।।

कामुक मुकरुक, निन्नॅमूटुक, ञाना-
पूमुटि च्चुरुळिनु सौभाग्यमाशंसिप्पू ! ।।१०।।

निद्रयिल् निलीनमाय् क्कषिञ्ञु पारं वानुं,
हृद्रम तनिच्चायिच्चम ञ्ञुनीयुं ञानुम्,
निन्नुटॅ यगाधमा माशय रहस्यत्तॅ
थॉन्नुनी ममात्माविन् कर्णत्तिल् मंत्रिच्चालुम् ! ।।११।।

पूर्ण आत्मामें भरे हुए अनुभवोंको बाँटनेवाली कला-शैली मैंने तुमसे ही सीख ली। नित्य गायक ! सत्य-जीवनके अखण्ड गीतोंका ताल-क्रम मेरे हृदयके स्पन्दनोंको सिखा दो। जीवन ही गान है; काल ताल है; आत्माके भिन्न-भिन्न भाव ही भिन्न भिन्न राग हैं और विश्व-मण्डल ही लय है ॥८॥

चन्द्ररूपी चषकमें, आनन्दके फेनोंसे भरी हुई मदिरा लिए, शुक्ल पञ्चमी दया कर धीरे-धीरे आई। जिसमें उस नम्रमुखीकी नील भौंहोंकी छाया पड़ रही थी, उस पान-पात्रको उतावले हाथोंसे लेकर और फेनरूप मञ्जुल स्मित करते हुए पीकर, दूसरोंके बोधके बिना गानेवाला, हर्षसे विजृंभित शरीरधारी, भावोंसे तरंगित तुम्हारी उस विस्तृत छातीमें सिर सम्हालते हुए, वह वधू लज्जासे मूक बन खड़ी है। रातकी केशवाली उस युवतीकी खुली वेणीसे हजारों प्रफुल्लित कुन्द कलियाँ तुम्हारे कम्पित, स्निग्ध वक्षपर झड़कर चमक रही है। वे प्रतिबिम्बित होनेवाले नक्षत्र समूह नहीं हो सकते ॥९॥

कामुक चूम लो। अपनेको ढॅक लो। मै उस घुँघराले केशके सौभाग्यकी आशंसा करता हूॅं ॥१०॥

भूमि और आकाश निद्रामें विलीन हो चुके हैं। हे हृदयमें रमण करनेवाले, अब हम और तुम दोनों एकाकी हो गये। अपने आशयके अगाध रहस्यको मेरी आत्माके कानमें कह दो ॥११॥

धीरमामॉरु परिवर्त्तनोत्साहत्तिन्टॅ
गौरवं विडङ्ङु गानवीचिकळुच्चंडात्मन्,
जीवित-परिमिति येतुमे सह्विवकात्त
दैविकास्वास्थ्यं पूट निन्निल् निन्ननुवेलम्
स्थितिपालनं नित्यं धर्ममाय् व्याख्यानिक्कुम्
क्षितियॅ स्समुत्कंपयाक्कुमारुयरुन्नु ।।१२।।

निश्चयं त्वत्संदेशं वेपमुंटाक्कुन्नुटुं
निश्चलनभश्चर नक्षत्र साम्राज्यत्तिल् ।।१३।।

क्षीण मामॅन्नात्मावु तकर्न्नाल् तकर्न्नोट्टे,
वीणयाक्कुक भवदाशयं गानं चॅय्वान् ।।१४।।

———

चण्डात्मन् ! एक धीर परिवर्तनके उत्साहके गौरवसे भरी हुई गान-तरंगें, जीवनकी परिमितियोंके असहनशील दैविक अस्वास्थ्यसे भरे हुए तुममेंसे, उमड़ती हुई उठ रही हैं और उस भूमिको कम्पित कर रही हैं; जो स्थिति-पालनको अपना नित्य धर्म मानती है ॥१२॥

निश्चय ही तुम्हारा सन्देश निश्चल आकाशमें सञ्चार करनेवाले नक्षत्रोंके साम्राज्यमें कम्पन पैदा कर रहा है ॥१३॥

मेरी थकी आत्मा चकनाचूर हो जाती हो, तो हो जाने दो। तुम उसे अपने आशयका गान करने योग्य वीणा बना लो ॥१४॥

---

६. कॉच्चम्म

उम्मरत्तिळंमणि त्तिण्णमेल् मल्लॅक्कॉचि
च्चुम्म वच्चॉरु चॅरु पूच्चयॅक्कलिप्पिच्चुम्
मिन्निटुं वॆळ्ळि क्किकण्णत्तिकलॅ पालेतानुम्
तन्निटकरं कॉण्टु तटवि क्कुटिप्पि च्चुम्
मेविनाळॉरु मंक, पिन्निलॅज्जनालच्चि-
ल्लाविलासिनी रूपं भंगियिलॅष्ुतवे ।
उच्चयां वरॅ त्तुळ्ळिप्पच्च वॆळ्ळवुं कूटि-
प्पिच्च किट्टाते, वाटिप्पोय कुंपिळुमायि,
तॅल्लु दूरत्ताय् निल्पू दुर्भिक्षं मांसं कान्नि —
ट्टॅल्लुमात्रमाय् तीर्न्न याचक कुमारकन् ॥१॥

नाविनाल् नुषयुन्नू, पाल् नुकन्नीटुं धन्य,-
जीवियॅ क्षुधाजड दृष्टियाल् वीक्षिक्कुन्नु ;
मानवकुलत्तिल् वन्नॅतिनु पिरन्नॅन्नु
तानवन् विचारिक्कॅ क्कण्णुकळ् कलङ्ङुन्नु ।
कर्मसाक्षियां कालं तच्चित्रं वॆळिच्चत्तिन्
नेर्म्मयेरीटुं तूवॅण्पटत्तिल् पकर्त्तवे,
ऑच्च केळ्क्कया लॅतो तन्मुखं तिरिच्चाळा —
कॉच्चम्म काट्टिल् तलिच्चुन्नुलयुं तण्टार् पोले ॥२॥

६. छोटी मालकिन

सामनेके बरामदेके रत्न-जटित चबूतरेपर एक छोटी बिल्लीसे प्यारकी बातें करती हुई, उसे चूमती-खिलाती हुई और चमकती हुई चाँदीकी थालीमें रखे दूधको, बाएँ हाथसे पुचकारकर, उसे पिलाती हुई एक युवती बैठी थी। पीछेकी खिड़कीका शीशा उस विलासिनीके रूपको सुन्दर ढंगसे और भी सुन्दर बना रहा था।

एक याचक बालक जिसे दोपहर तक, भीखके रूपमें, ठण्डा पानी भी नही मिला था, सूखे दोनेको लिए हुए खड़ा था। दुर्भिक्षने उसके शरीरके मांसको सुखा दिया था और उसका शरीर हड्डीका एक ढाँचा मात्र रह गया था ॥१॥

उस दोनेको वह जीभसे चाट रहा है तथा दूध पीनेवाले उस भाग्यशाली बिल्लीके बच्चेको क्षुधासे पीड़ित अपनी जड़वत् दृष्टिसे देख रहा है। उसके मनमें विचार उठते हैं कि आखिर मैं क्यों मानव वंशमें पैदा हुआ ! इस तरह के विचारोंके दिमागमें आनेके कारण उसकी आँखें रक्तिम हो रही थीं। कर्मका साक्षीभूत काल उसके चित्रको बारीक, सफेद पटपर खींच रहा था। कुछ आवाज सुनकर उस छोटी मालकिनने अपना मुँह मोड़ लिया——उस कमलकी तरह जिसका डण्ठल हवामें हिलता-डुलता है ॥२॥

पुरिकं चुळिच्चुग्रं गर्जिच्चाळ् : "कटन्नु पो
करिमोंतयुं कों, प्टॅन् 'मल्लि 'क्कु कॉंति पट्ट.ुम् ।"
मोळिलेक्कवनॉन्नु नोक्किना, ना नोट्टत्तिन्
काळिटुं चटिल् दैवं पॉरिञ्ञु पोयोलल्ली ? ।
ऑन्नवन् नॅट्टुतयि वीर्प्पिट्टान्; धर्मं त्तिन्टॅ
युन्नतमणि ध्वजं कुलुङ्ङिप्पोयीलल्ली
माञ्ञुपोय् अवन् मन्दं मुट्ट.न्तुनिन्नुं; तन्वि
चाञ्ञुतन् कसाल मेल्; मयङ्ङान वैकीलल्ली ! ।।३।।

वह भौहें टेढ़ी करती हुई उग्र स्वरमें गरज उठी, "अपना काला मुँह लेकर बाहर जा, मेरी 'मल्ली' को तुझ भुखमंगेकी दीठ न लग जाए।"* उसने एक बार ऊपरकी ओर देखा। उस चितवनकी प्रज्वलित गर्मीमें ईश्वर जल गया होगा न? उसने एक बार लम्बी साँस ली। उससे धर्मका ऊँचा रत्न-ध्वज काँप उठा होगा न? वह धीरे-धीरे आँगनसे चला गया। युवती अपनी कुरसी पर झुक गई, यह सोचकर कि कहीं सोनेमें विलम्ब न हो जाए। ॥३॥

---

* यह माना जाता है कि यदि हमारे खाते समय कोई दरिद्र या भूखा व्यक्ति खानेकी अभिलाषासे देख ले तो हममें अजीर्ण, वमन जैसी बीमारियाँ हो जानेकी सम्भावना रहती है। इसे मलयालममें "काँति पट्ट.ुका" (काँति=अभिलाषा, पट्ट.ुका=लगना) कहते हैं।

७. निमिषम्

जीवितप्पूविले तेन् नुकर्न्नङङने
ताविन कौतुकाल् प्पारि प्पारि,
नीखं पोकुन्न कॉच्चु निमिषमे,
चोरनां निन्ट् चिर कुकळे
कोळ्मयिर् कोलुं तन् कैकळिलाक्कानॅन्
कोमल भावन मोहिक्कुन्नु ।
चुंबिच्चु चुंबिच्चॅन् नचिलटक्कुवान्
वॅम्पुमी मुग्धयॅ वंचिक्कॉल्ले ।
कालिण कॅट्टट्टे नेरिय वाक्किन्ट्
कालिण कॅट्टट्टे नेरिय वाक्किन्ट्
नलिनालोमने, नोविक्काते ।।१।।

कॉचुमी मुग्धिक सूक्षिच्चु नोक्कट्टे
पिचु चिरकिन्मेल् अक्षमयाय् ।
ऍण्णियाल् त्तीरात्त वर्ण विशेषङङळ्
कण्णीरालार्द्रमामी चिरकिल्
मानव मानस च्चायङङ ळाकिन
नाना विकारङङळ् चेर्त्तल्ली ?
मायिक माकुमऽभावङङळ् कार् विल्लिन्
माधुर्य पूशुमित्तुम्पिल् काण्मू,
आशयाल् चंचल मायॅष् मात्माविन्
पेशल माकिन वॅपलॅल्लाम् ।।२।।

७. निमिष

जीवन-पुष्पका मधु पीते-पीते और कौतुकसे उड़ते-उड़ते, चुपचाप जानेवाले छोटे निमिष, तुझ चोरके पंखोंको, अपने रोमाञ्चित हाथोंमें पकड़ लेनेकी मेरी कोमल भावना अभिलाषा कर रही है। चूमते-चूमते अपने हृदयमें वन्द कर रखनेको उत्सुक उस मुग्धाको धोखा न दो। प्यारे, तुम्हारे दोनों पैरोंको शब्दोंके हलके धागेसे विना पीड़ा दिए मैं बाँध लूँ! ॥१॥

तुतलाती हुई यह मुग्धा तुम्हारे छोटे-से पंखोंको अधीर होकर ध्यानसे देख ले। आँसुओंसे गीले इन पंखोंपरके अनगिनित वर्ण-भेद, मानव मनके रंग-रूप, विविध विकारों द्वारा क्या नहीं लगे हुए हैं? वे मायिक भाव इन्द्रधनुषका माधुर्य जिन पंखोंके छोरपर लगाते हैं, उनपर आशासे चञ्चल आत्माकी सारीकी सारी कोमल उत्सुकताको देख लेते हैं ॥२॥

मुन्निल् निन्नॅत्तुन्नू, पिन्निल् मरयुन्नु,
मिन्नलुं ञॅट्टुन्न वेगमोटे ।
एॅङङु निन्नॅ ङङु निन्नेकांत वैचित्र्यम्
तङङुमि क्कॉच्चु निमिष मॅल्लाम् ?
एॅङङुपोयॅङङु पोय् मायुन्नु भावन-
यिङङु पकच्चु मिषिच्चु निल्क्के ?
नेर्म्मयिल् तन् विरल्त्तुम्पिन्मेलॉट्टि यो—
रोर्म तन् स्निग्धमां रेणुक्कळे
पुंचिरि तूकियुं कण्णुनीर् वार्त्तु मी-
वंचित नोक्कुन्नु मारि मारि ।।३।।

एत्र मेल् क्षुद्रमल्लोरो निमिषमा—
पत्रमटिच्चतु पारी लॅकिल्
एॅण्णियालॅत्तात्त जीवित स्पन्दङङळ्
मण्णिलुं विण्णिलु मुण्टाकुमो !
कुट्टियॅक्काणानुषरुन्नोरम्मतन्
मट्टिलुषलुन्न कर्ममॅल्लाम्
तन्नुटॅ तन्नुटॅयाय फलङङळॅ—
च्चॅन्नु कण्टॉन्नु पुणर्न्नीटुमो ?
पिंचु चिरकिन्टॅ काट्टिनाल् पापी तन्
नॅंचिल् ज्वलिक्कट्टे भीति नाळम् ! ।।४।।

जिनके वेगसे बिजली भी चौंक पड़ती है ऐसे एकान्त वैचित्र्य वाले ये छोटे-छोटे निमिष कहाँ-कहाँसे सामने आते हैं और फिर गायब हो जाते हैं ! कल्पनाके घबराते, अनिमेष दृष्टिसे देखते-देखते ये कहाँ विलीन हो जाते है ? अपनी उँगलियोंके छोरपर लगी हुई स्मरणकी हलकी और स्निग्ध रेणुओंको यह वञ्चिता हँसती-रोती वारी-बारीसे देखती है ।।३।।

प्रत्येक निमिष कितना क्षुद्र है ! फिर भी यदि वह पंख चलाता उड़ता नहीं, तो क्या मिट्टी और आकाशमें जीवनके अनगिनित स्पन्दन पैदा हो जाते ? और सन्तानके दर्शनकी लालसासे दौड़नेवाली माताकी तरह, घूमने-फिरनेवाले कर्म, अपने-अपने फलोंको देख सकते, उन्हें गलेसे लगा सकते ? इस छोटेसे पंखकी हवासे पापियोंकी छातीमें भयकी ज्वाला जल उठती ! ।।४।।

एॅत्रमेल् क्षुद्रमल्लोरो निमिषमा—
प्पत्रमटिच्चतु पारीट्टुम्पोळ्,
अंडकटाहवुं मुन्पोट्टु मुन्पोट्ट—
च्चंडमां वेगत्ताल् नीङिङ टुन्नु !
ओरो चिरकटि जन्तु चित्त ङङ्ळिल
ओरो विधत्तिल् प्रतिध्वनिक्के,
कर्म संस्कार त्तिन् मार्गत्तिलूटवे
जन्ममृतिकळ् चविट्टि क्केरि,
चॅन्निटुं जीवित घोषयात्रक्कतु—
तन्नॅयाणानकध्वानकेळि ।।५।।

पिन्नालॅ पिन्नालॅ तॉट्टु तोट्टुङङने
वन्नीटुं मुग्ध चलनङ्ङळे,
निङङळ् परत्तुं चिरकिन् निषल्लली
ञाङङळ् तन्नत्भुतमाय वानम् ?
नित्यमाय् निश्चलमायतु काणुन्नू;
सत्यमाय् तोन्नुन्न मिथ्यमात्रम् !
कुञ्ञाच्चिरकटि क्काट्टि नाल् गोळङङळ
मञ्ञान् कणिक पोल् क्कम्पिक्कुन्नु !
मानव शक्ति तन् गर्वत्तिन् साम्राज्यम्
माराल पोले विरच्चींटुन्नु ।।६।।

कितना क्षुद्र है प्रत्येक क्षण ! फिर भी जब वह पंख चलाता उड़ता है तब ग्रह-समूह आगे-आगे प्रचण्ड वेगसे बढ़ते हैं। प्रत्येक पंख के चलनेकी आवाज जन्तुओंके हृदयोंमे भिन्न-भिन्न ढंगसे प्रतिध्वनित होती है। तब कर्म संस्कारोंके मार्गसे जन्म और मृत्युपर पैर रखते हुए बढ़नेवाले जीवन-जुलूसके लिए वही नगाड़ेकी आवाजकी लीला बन जाती है ।।५।।

एकके बाद एक आनेवाले मुग्ध चलनो ! तुम्हारे फैलाए हुए पंखोंकी छाया ही हमारा विस्मयजनक आकाश है न ? वह नित्य और निश्चल दिखाई देता है; लेकिन वास्तवमें सत्य-सा प्रतीत होनेवाला वह मिथ्या मात्र है। छोटे-छोटे पंखोंकी वायुसे ग्रह हिम-बिन्दुओंकी तरह कम्पित हो जाते है और मानव बलके गर्वका साम्राज्य मकड़ीके जालेकी तरह काँप उठता है ।।६।।

जीवितत्तिन् पषम्पूक्कळ् कॉषिञ्ञालॅ--
न्नोविधमुळ्ळ चिरकिटयाल् ?
नूरु नूरायिरमल्ल परिणाम--
नूतन भंगिकळ् मॉट्टिटुन्नु !
अंबरमध्यं तिळक्कुन्नोरादित्य -
बिबवुं कॅट्टु पोमॅन्निकलाट्टे,
अक्करियूतिप्पिटिप्पिच्चु मट्टॅरु
तीक्कट्टयुण्टाक्कुं सर्गशक्ति !
चट्टुं वॆळिच्चवुं पिन्नॅयुं पिन्नॅयुं
नेटि विटर्न्नोटुं जीवितङ्ङळ् ।।७।।

कॉच्चु निमिषमे, यात्र चोदिच्चु कॉ,
ण्टीच्चिन्त निर्त्तुन्नु, पोवुकनी,
ञानटक्कीटु मॅन् कण्णुनीर् त्तुळ्ळि वी-
नी नल् चिरकु कुषयुं मुम्पे !
तन् चिर-प्रार्थित सौन्दर्य मूर्त्तिक्कु
संचित कौतुक मिस्संदेशम्
पूंचिरकिन्मेल् क्कुरिक्कुवानुत्कंठ
तंचुमॅन् भावन वॅपल् कॉळ्वू :
"आदर्श तन्नुळ्ळिल् संकल्पच्छाय क-
ण्टादरि च्चॅत्र नाळ् पोक्कणं ञान् ?" ।।८।।

['निमिषम्' से]

इन पंखोंके चलनेसे जीवनके बासी पुष्प झर जाएँ तो क्या हर्ज है ? परिवर्तनके फलस्वरूप नए-नए सौन्दर्य सैकड़ोंकी संख्यामें प्रस्फुटित होते हैं। आकाशके मध्यको चूमनेवाला सूर्य-विम्व बुझ जाए तो बुझ जाए। सर्जनकी शक्ति लकड़ीके उस कोयलेको फूँककर एक दूसरा अंगारा बना लेगी और गर्मी तथा प्रकाश पुनः पुनः प्राप्त करके जीवन खिल उठेगा ।।७।।

ओ लघु निमिष ! तुमसे विदा लेकर यह चिन्ता रोक देता हूँ। मेरे दवाए हुए आँसुओंके बिन्दुओंके गिरनेसे पंख थक जाएँ, इसके पहले ही तुम जाओ। जिस सौन्दर्य मूर्तिकी चिर कालसे प्रार्थना की जाती है उसके लिए यह सन्देश तुम्हारे फूल जैसे पंखोंपर लिखनेकी उत्कण्ठा लिए हुए मेरी कल्पना उतावली हो रही है। "आदर्शके भीतरा दर्शित-कल्पित छायाका आदर करते हुए और कितना समय विताना पड़ेगा ?" ।।८।।

———

८. अषि़मुखत्तु

'वंचि'[१] यिलषि़मुखत्तॅत्ति ञ्ञान्; समुद्रत्तिन्
नॅचिल् वानमर्त्तुन्न कट्टारप्पिटिपोले
चोरयिल् प्पटिञ्ञारे चक्रवाळत्तिल् वकाणां
सूर्यबिंबत्तिन्नट्टूं ! नटुङिङत्तॅरिक्कुन्नु !
सागरं पिटयवे, वितुम्पि वितुम्पि वकॉ —
ण्टागमिच्चीटुं नीलवेणि चूर्णियॅ[२] स्नेहाल्
चालवे तटुक्कुवान् वेलप्पॅण् नीट्टुं कय्यु—
पोलता विलङङनॅ विळरुं मणल्क्कर ॥१॥

तन्नवरोधत्तिले[३] श्शपथं[४] जल रेख—
यॅन्नु मत्तटिच्चिट्टु नियताधिकारत्तॅ
पिन्नॅयुं परत्तुवान्, जनता रक्षक्कायि—
निन्न नीतियॅ त्तट्टिक्कटक्का, नारंभिक्के,
शूरनामॉरु पॅरुमाळॅ मुन्पी नाटिन्टॅ
धीरमां सिरारक्तं तिळक्कुमेतो हस्तम्
कुत्तिय कथयिलॅ[५] वीरसंभवं कॉण्टु
तीर्त्त नाटकं नटिप्पिक्कयल्लल्लो विश्वम् ?
हा सहिच्चिरुन्नील पूर्वकेरळम्, स्वेच्छा—
दासमां चॅकोलिन्टॅ दृप्तमां निषल् पोलुम् ॥२॥

---

१. तिरुवंचिक्कुळम् २. एक नदी—पॅरियारु ३. पॅरुमाळ्—(केरलके सम्राट) के पदपर बिठाना ४. प्रजा-पालनवाली प्रतिज्ञा ५. यह हत्या-कथा इतिहास प्रसिद्ध है ।

८. नदी-समुद्र-संगमपर

[प्राचीन कालके महोदयपुर—तिरुवंचिक्कुळमके पासका नदी और समुद्रका संगम-स्थल ही इस कविताकी रंगभूमि है ।]

मैं 'वंचि' (तिरुवंचिक्कुळम्) के अषिमुखम्पर पहुँचा। पश्चिमी क्षितिजमे आकाश द्वारा समुद्रकी छातीमें चुभोए हुए कटारके हत्थेकी तरह सूर्यका बिम्ब खूनमें दिखाई देता है और समुद्र सहमा हुआ-सा काँप रहा है, तड़प रहा है। उस समय रोते-कलपते आनेवाली 'चूर्णी' नदीको स्नेहसे रोकनेके लिए लक्ष्मी द्वारा वढ़ाए हुए हाथकी तरह, आड़े पड़ा, पीला बालुका-तट दिखाई दे रहा है ॥१॥

अभिषेकके अवसरकी शपथ (प्रतिज्ञा) जल-रेखा ही है, इस प्रकार सोचकर गर्वके साथ अपने नियत अधिकारको वढ़ाने और जनकी रक्षाके लिए बनाई हुई नीतियोंका उल्लंघन होना आरम्भ हुआ। तब किसी हाथने, जिसकी शिराओंमे इस देशका धीर रक्त खौल रहा था, एक शूर वीर पॅरुमाळके शरीरमें कटार घुसेड़ दिया था। शायद (सन्ध्या समयकी) यह प्रकृति उस कथाकी घटनाओंके लिए रचित एक नाटकका अभिनय करा रही है। हाय! हाय!! प्राचीन केरल स्वेच्छाधिकारकी दासता करनेवाले राज-दण्डकी दृप्त छाया भी सह नहीं सकता था! ॥२॥

रंगमॅङङनॅ मारि ?   जनता तंत्रत्तिन्टॅ
मंगळ मणित्तॉट्टिलिन्नतिन् शवक्कट्टिल् !
मिन्निटुं मुत्तिन् पट्टं नॅट्टिमेलणिञ्ञान्ति–
प्पॉन्निळं तुटुप्पुटु प्पान्नॅषुं तिरकळे,
सागरराजाविन्टॅ युपहारवुं चुम––
न्नागमिच्चिरुन्नवराय मोहिनिकळे,
ञॅट्टिनिल्क्कुवतॅन्तु, पण्टत्तॅ ‘ महोदय ––
पट्टण’ मितां ; मुखं कुनिप्पिन्, विलपिप्पिन् !   ॥३॥

पोयि केरळं, मुन्नु मुरियायॉटिञ्ञ वि–
ल्लायि ; संस्कारत्तिन् ञाणषञ्ञु किटक्कुन्नु ।
एतु कय्यिनियितिन् मुरि कूट्टीटुं ? ञाणिन्
मेदुर मधुरमां रवमॅन्निनि क्केळ्क्कुम् ?
आरितिलिनि महाजन शक्तितन्निच्छा–
कारियां समुज्ज्वल कर्मत्तॅ त्तॉटुक्कुवान् ?
पोवुकक्कथ ; किनाविन्टॅ पॉन्कसविट्ट
पावु नॅय्तालिन्नत्तॅ नग्नत मरय्क्कामो ? ॥४॥

दृश्य कैसे बदल गया ! जनतन्त्रका शुभ और श्रेष्ठ पालना आज उसीकी मृत्यु-शय्या बन गई है। चमकनेवाले मोतियोंके पटको माथेपर धारण करनेवाली, सन्ध्याके स्वर्णिम अरुण वस्त्र पहनने वाली तरंगो, समुद्र राजाके उपहारोंको वहन कर आनेकी अभ्यस्त सुन्दरियो, तुम चौंककर रुक क्यों गई ? यही प्राचीन कालका महोदय नगर है। सिर झुका लो और रुदन करना भी प्रारम्भ कर दो ! ॥३॥

केरल नष्ट-भ्रष्ट हो गया। वह तीन खण्डोंमें भग्न धनुष बन गया है। उस धनुषकी संस्कृति रूपी प्रत्यञ्चा ढीली पड़ी है। कौन हाथ इस जख्मको भर देगा ? उस डोरीकी मधुर टंकार अब कब सुनाई पड़ेगी ? कौन ऐसा होगा जो इसपर सबल जन-शक्तिकी आज्ञाओंको माननेवाले उज्ज्वल कर्म चढ़ा देगा ? वह कथा रुक जाए। स्वप्नका जरीवाला कपड़ा बुनकर नग्नताको ढाँक नहीं सकते ॥४॥

तॅल्लु दूरत्ताय् नीलप्पट्टिन्मेलोरो पच्च-
क्कल्लुपोल् तुरुत्तुकळ् कायलिल् क्काणाकुन्नु ।
अळियुं चक्रियिल् निन्नु कांचनक्कम्पि
विळयिच्चोटुं नित्य निस्वराणतिलॉक्के ।
अवर् तन् ञारम्पिलॅ मज्जयुं कूटि क्कान्नु
शवमाक्कुन्नू दीन केरळ श्रीयॅ क्षामम् ।
काट्टि.नाल् वॅळ्ळप्पायप्पळ्ळ वीर्तत्तोल्लासम्
नीट्टि.लाण्टुल ञ्ञाटि कर्वळिक्कुं पल कप्पल्,
मुन्पु सागर जात वाणिज्य श्रीतन् वेळ्ळ--
क्कॉम्पनानकळ् पोलॅ कूत्ताटुमिटङ्ङ्ळिल्,
नालंचु मीनिन्नायि मुङ्ङियुं, पलप्पो.षुम्
आलस्यत्तोटे वॅरुं वयराय् पॉङ्ङिप्पोन्नुम्,
अङ्ङङ्ङाय् चिल चीनवल तन् कोलं मात्रम्
मङ्ङ निलपतु काणां परुन्तिन् मेल नोट्टत्तिल् !
कॉच्चु तोणियिल् प्पट्टि., च्चूण्टलिल् मात्रं कण्णु
वॅच्चु कॉण्टनङ्ङातॅ चट्टित्तॉप्पियुमायि
मेवुमिक्किटात्तन्मार तन् पूर्वरी नाटिन्टॅ
भावुकं पुलर्त्तिय नाविक त्तलवन्मार !
लोलयिल् मातािवन्टॅ मटियिल् क्कुमारन्मार
पोललक्कटलिलुं कायलिन् नटुविलुम्
तिर तन् चॅवि पिटिच्चाटिच्चु दुस्सामर्थ्यम्
तिरळुं कोट क्कॉटुंकाट्टु वन्नॅतिर्तालुम्,
ओटिथॅ मरिक्कुमॅन्नार्तालुं, वंचिप्पाट्टु
पाटियुं, कुलुङ्ङातॅ चिरिच्चुं, रसिच्चवर् !
अवरिल् कॉटुंकाट्टि.न् साहसं, समुद्रत्ति-
न्नवसानमिल्लात्त गांभीर्य, रण्टुं, कण्टु ।।५।।

थोड़ी दूरपर नील रेशमपर हरे रत्नोंकी तरह दिखाई देनेवाले कुछ द्वीप 'कायल'[१] में दिखाई देते हैं। नारियलके सड़े हुए ऊपरी छिलकोंके रेशोंसे सोनेका तार उगानेवाले नित्य दरिद्र लोग ही उनमें रहते हैं। उनकी नसोंकी मज्जाको भी खाकर अकाल केरल-श्रीको शव बना रहा है। जहाँ पहले हवासे भरे सफेद पालवाले पेट लिए बड़े उल्लाससे पानीमें मग्न होकर कई जहाज, समुद्रसे उत्पन्न वाणिज्य लक्ष्मीके धवल हाथियोंकी तरह हिलते-डुलते और खेलते रहते थे, वहाँ आज दो-चार मछलियोंके लिए डूबते और अक्सर बड़ी थकावटसे खाली पेट लिए उठते रहनेवाले कुछ चीनी[२] जाल, चील पक्षियोंकी देखरेखमें फीके पड़े दिखाई देते हैं। छोटी नावोंमे बैठे और काँटोंपर नजर गड़ाए, चिपटी टोपी पहने, बिना हिले रहनेवाले इन लड़कोंके पूर्वज ही इस देशकी भलाईको बढ़ाने वाले नाविक नेता थे। माताकी गोदमे लीला करनेवाले लड़कोंकी तरह वे समुद्रों और कायलोंमें तरंगोंके कानोंको पकड़ कर नचाते थे। शरारत-भरी आँधी आकर सामना करे और गरजती हुई कहे कि नाव उलटा दी जाएगी, तब भी वे गीत गाया करते थे और बिना भयभीत हुए हँसते थे और मजा लूटते थे। उनमे आँधीका साहस और समुद्रका अनन्त गाम्भीर्य दोनों विद्यमान थे ।।५।।

---

१. Back Waters

२. चीनी जाल—एक प्रकारका जाल जो एक लकड़ीपर लगा रहता है और लकड़ीके नीचे आनेसे पानीमे डूबता और उसके ऊपर जानेसे निकलता रहता है।

केरळत्तिनु मरन्नीटुवान् वय्याट्द्धिर——
धीररॅत्तिरक्काद्यं कटिञ्ञाणॅरिञ्ञोरे !
फेनिल जलधियॅ नोक्कि ञ्ञा; ——नतिन् पोय
जीनियुं कटि ञ्ञाणु मॅन्नु ञ्ञानिनि नेटुम् ? ।।६।।

एन्नु नम्मुटॅ याणॅन्नभिमानत्ताल् जृंभि——
क्कुन्नॉरी वितानत्तिल् केरळ वाणिज्य श्री
तन्नुटॅ युरुक्कळॅ यिच्छपोल् मेयान् विट्टु——
निन्नु निर्भयं नुरप्पूवरुत्ताटिप्पाटुम् ? ।।७।।

एॅन्नु नम्मुटॅयाय नाटु काक्कुवान् दूरॅ——
च्चॅन्निरम्पीटुं तोक्किन् कुरयाल् परन्मारे
ऑन्नु ञ्ञॅट्टिच्चुं कॉण्टु नम्मुटॅ पटक्कप्पल्
तन् निर कुतिच्चोटि क्कटलिल् चुर मान्तुम् ? ।।८।।

हा वरुं, वरुं नूनमादिन——मॅन् नाटिन्टॅ
पावन पताककळ् कटलिल् तत्तिप्पारुम्;
हा वरुं, वरुं नून मादिन;—मॅन् नाटिन्टॅ
नावनङिङयाल् लोकं श्रद्धिक्कुं कालं वरुम् ।।९।।

केरल उन धीरातिधीर लोगोंको, तरंगोंपर बागडोर कसने-वालोंको भूल नहीं सकता। मैं फेनिल समुद्रको देखता रह गया। हम कब उसकी खोई जीन और लगाम प्राप्त कर सकेंगे? ॥६॥

'यह हमारा है'—इस अभिमानसे बढ़ते हुए इस वितानमें कब केरलकी वाणिज्य-श्री अपने जहाजोंको उनकी इच्छापर चरने छोड़-कर बिना भयके, फेन-पुष्पोंको चुनते हुए नाच-गान करेगी? ॥७॥

कब हमारे लड़ाकू जहाज इस देशकी रक्षाके लिए दूर जाकर गूँजनेवाली बन्दूकोंकी आवाजसे दुश्मनोंको चौकाते हुए उछलते-कूदते दिखाई देंगे और समुद्रको खरोंचते हुए आगे बढ़ेंगे? ॥८॥

हाँ, वह दिन जरूर आएगा, जब कि मेरे यशकी पावन ध्वजाएँ समुद्रपर फहरा उठेंगी। हाँ, वह दिन आएगा, जरूर आएगा, जब कि मेरे देशकी जिह्वाके चलते ही संसार उसपर गौर करेगा ॥९॥

ई विचारत्तिन् मीते विरियान् निजोष्मळ-
भावन चुरुक्किक्कोण्टॅन् मनमिरि क्कवे,
अन्तियिल् महादेव क्षेत्रत्तिल् निन्नुं काट्टि.ल्
नीन्ति वन्नोटुं क्षीणक्षीणमां शंखारावम्,
चेरयुमॅलिकळुं तङ्ङळिल् क्कलहिक्कुम्
चेरमान् परम्पिन्टॅ नोण्ट रोदनं पोले,
अम्पलं, पल पळ्ळि तॅङिङन् तोप्पुकळ्, कायल्-
तन् परप्पिवकळॅ यॉक्कॅ विह्वलमाक्कि,
विलयिक्कयाय् वानि लॅन्टॅ यात्माविल्, शान्त—
निलयॅ स्सहिक्कात्तॉरन्तिकसमुद्रत्तिल्।
तल पॉक्कि ञान् नोक्कियाराणानोल च्चीन—
वल कॅट्टि निल्कुन्नतीयपारतयिकल् ?
मुकळिल्त्तिळङ्ङुन्नु वष्ुतित्तत्ति प्पोय
पकलिन् चितम्पलिन् वॅण्नुरुक्कङिङङङायी।
दूरॅयाक्किषक्कॅषुं कुन्निन्टॅ मेलट्ट्.त्तु
नारॅतिर् निरकतिरान्तॉ रम्पिळि मिन्नी
तुंगमां निरपर वॅच्चतिन् मेल् क्भागत्तु
मंगळं वळर्त्तुन्न तॅङिङन् पूक्कुल पोले ।।१०।।

['मुत्तुकळ्' से]

———————

इन विचारोंके ऊपर, उन्हे सेनेके लिए जब मेरा मन अपनी ऊष्म भावनाओंको संकुचित करते हुए बैठा था, तब पासके शिव-मन्दिरसे क्षीण शंख-ध्वनि हवामें तैरती हुई आई, उस चेरमान परम्प[1] के दीन रोदनकी तरह, जिसमें चेरा[2] साँप और मूसा आपसमें लड़ रहे हैं। यह शंख-ध्वनि मन्दिर, गिरजे और मसजिद, नारियलके बगीचे, कायलोंके विस्तार आदिको कँपाती हुई आकाशमें, मेरी आत्मामें और शान्त दशाको न सहनेवाले समुद्रमें विलीन हो गई। सिर उठाकर मैने देखा। वह कौन है जो इस अपारतामें चीनी जाल बाँधे हुए खड़ा है? खिसककर बचे दिनकी चोइयोंके सफेद टुकड़े ऊपर झलक रहे है। दूर, पूरवकी पहाड़ीके ऊपर एक सिरेमें तन्तुओंके समान बारीक किरणवाला चाँद चमक उठा--उस तरह जैसे निरपरा[3] के ऊपर नारियलकी शुभद मञ्जरी ॥१०॥

---

१ चेरमान परम्प--तिरुवंचिकुलममे एक स्थान विशेष। यह स्थान सबसे अन्तिम सम्राट चेरमान-पॅरुमालकी राजधानी माना जाता है।

२. चेरा--विष-हीन एक साँप विशेष।

३. निरपरा--नाप-तौलकी एक इकाई है। इसमे धान या चावल भरकर और नारियलकी मञ्जरी रखकर मगल अवसरोंके समय-विवाह, स्वागत आदि-दीपकोके पास रखा जाता है।

९. कालम्

माळमॅड्ङरिञ्ञ‌ालि, संचरिक्कुन्नू काल–
काळमंडलि जगन्मंडलड्ङळॅच्चुट्टि ।
नेरिय नाना 'शुक्ल पटल' ङ्ङळ ल्लिति––
न्नूरियोरुरकळाण व्यक्त स्थलांतत्तिल् ।
'विरियुं विरियु'–मॅन्निङ्ङनॅ मोहिच्चुं कॉ–
ण्टरिकत्तिरिक्कुन्नू पावमे वियत्पक्षी ।
गोळमुट्टकळतिन् चिरकिन् कीषिल् क्काणाम्
नीळवे; कालं कॉत्तिक्कुटिच्च तॉण्टाणॅल्लाम् ।।१।।

पकलुं रावुं नाविन् रण्टु तुम्पव नीट्टि––
प्पकयोटुग्रानंतद्विजिह्वं नक्कोटुम्पोळ्
उटलु तरिक्कुन्नू, पर्वतं स्तंभिक्कुन्नु,
कटलुं जाताकम्प संरंभं चुळु ङ्ङन्नु।
ईविधमिरिक्कवे तन् कळिक्कोप्पुं कॉण्टु
जीवितं कळिक्कयाणिन्नितिन् भोगत्तिन्मेल् ।।२।।

['पूजा पुष्पम्' से]

९. काल

काल रूपी काला साँप भू-मण्डलोंमें चक्कर खाते हुए जा रहा है। मालूम नहीं इसका बिल कहाँ है। उस अव्यक्त स्थलमें हलके शुक्ल पटल (नीहारिका) के रूपमे उसकी खुली हुई केंचुली ही दिखाई दे रही है।' अभी फूटेगा! अभी फूटेगा!!'—इस अभिलाषाको लिए हुए बेचारा आकाश-पक्षी पास बैठता है। उसके पंखके नीचे भूगोलोंके अण्डे दिखाई देते है। लेकिन वे सबके सब काल द्वारा फोड़ कर फेंके हुए छिलके मात्र हैं ।।१।।

इसकी जीभकी दो नोंके हैं—दिन और रात। जब वह उग्र और अनन्त अपनी जीभोंके दोनों छोर बढ़ाते, वैरसे चाटता है तब शरीर सन्न हो जाता है, पहाड़ स्तभित होता है, समुद्र भी काँपते हुए संकोच खाता है; जब ऐसी हालत है,तब भी जीवन अपने खिलौनोंको लेकर उसके भोगों (सुख और फन) पर खेल रहा है ।।२।।

१०. अम्मावन् आशीर्वादिक्कुन्नु

अक्कथ विचारिक्कॅ युत्कुट व्यथमूल—
मूळ्क्कळं नट्टुङ्ङारुण्टॅनिक्कॅन् सहोदरि !
मोळिल् निन्नारो पॉक्किकयॅट्टुत्तू सुखिच्चु निन्
तोळिल् ञान् मयङ्ङुम्पोळ्, ऍरिञ्ञु दूरक्कॅन्ने ।
रोदसी गुहान्तरं कुलुङ्ङी भयाक्रान्त—
रोदनत्ताले ; पॉट्टिक्करञ्ञुनां रण्टाळुम् ।
क्रूरलीलनायोरा मायावि क्कुण्टो कण्णिल्—
च्चोर ? वेदन काण्मताणवन्नत्याह्लादम ॥१॥

ऍन्तपराधत्तिन्ने कांतशून्यतयिन्कल्
भ्रांतनाय् जीवन्-मृतनायि ञानलयुन्नु ?
ऍन् चिरि, विळरियोरॅन् चिरि, सन्तोषत्तिन
पुंचिरियल्ला, दुःखोन्मादत्ताल् चिरिप्पू ञान् ।
करयानिल्ला कण्णीर, वाविट्टाल् पॉङ्ङिल्लॉच्च
करळ् विण्ट ञानॅन्तु चॅय्युं हा, चिरिक्काते ॥२॥

हा, मरन्निट्टिल्लिन्नुं चेच्चियि ब्भाग्यं कॅट्ट
सोमनॅ, दूरॅक्काणके तुटिक्कुन्नण्टा हृत्तुम् ;
कोळ् मयिर कॉळ्ळुन्नुण्टा श्यामळांगवुं, भ्रातृ
प्रेमत्तिन् किनाविलाण्टॉष्ुकारुण्टात्मावुम्
ऍन्नाळ् दुःखत्तिटॅयग्निपर्वतं पॉट्टि !
ऍन्न नाळाकाशत्तिलुद्गत बाष्पं कॅट्टि !
शान्तयाणिन्नेट्टत्ति पुरमे, पारं तापा—
क्रांन्तमाणॅन्नालुळ्ळ ृुळ्ळॅ निक्कॅल्लां वेद्यम् ।
मरविच्चु पों दुःखत्तिण्ट् जाडयत्तॅक्काळुं
करळिन्नकं नीट्टं नुनिलयाणार्ये सह्यम् ॥३॥

१०. मामा आशीर्वाद दे रहा है

बहन, जब मैं उस कथाकी याद करता हूँ तब अत्यन्त दुःखसे मेरा मन स्तब्ध हो जाया करता है। जब मैं तुम्हारे कन्धेपर चैनसे सो रहा था तब किसीने मुझे उठा लिया और दूर फेंक दिया। आकाश और भूमिके बीच का गुहान्तर रुदनकर भयभीत हो काँप उठा। हम दोनों जोरसे रोएँ। जिसकी लीलाएँ ही क्रूर हैं, उस मायावीका मन लोगोंको पीड़ित अवस्थामें देखनेमें ही आह्लादित होता है ।।१।।

किस अपराधके कारण मैं उद्भ्रान्त और जीवन्मृत होकर शून्यमें भटक रहा हूँ। मेरी हँसी, मेरी पीली हँसी सन्तोषकी हँसी नही है। दुःखके उन्मादसे ही मैं हँस रहा हूँ। रोनेको आँसू नहीं। जोरसे बोलूँ तब भी आवाज नही निकलेगी। मेरा दिल ही फट गया है। हँसनेके सिवा और मै कर ही क्या सकता हूँ ।।२।।

बहन, इस अभागे सोमको तू अब भी भूली नहीं है। मैं जब दूर दिखाई पड़ूँ तो तुम्हारा वह हृदय अब भी धड़क उठता है; वह श्यामल अंग रोमाञ्चित हो जाता है और भ्रातृ-प्रेमके स्वप्नोंमें वह आत्मा बह जाती है। कितने दिन तक दुःखका ज्वालामुखी जलता रहा। कितने दिन तक आकाशमें ऊपर उठने वाले आँसू जमा होते गए! आज वड़ी बहन बाहरसे तो शान्त है; लेकिन अन्दर ही अन्दर दुःखसे दुखी है। मैं सब कुछ जानता हूँ। आर्ये, दुःखके जिस जाड़ेमें हम सुन्न हो जाते हैं, उससे तो हृदयको दग्ध करनेवाली इस दशाको हम कहीं अधिक सहन कर सकते हैं ।।३।।

क्षीणपुण्ययल्लार्य, चैतन्यात्मकन् सूर्यन्
प्राणवल्लभनायी, पच्चप्पूम्पट्टं तन्नु ।
ई महाग्रहकुटुंबत्तिलुळ्ळाल्लावक्कुम्
श्रीमती वसुन्धर थिन्नु मॉरत्याश्चर्यम् ।
मादकमायी वर्णपूर्ण जीवितम्, श्वासा—
मोदमेदुरमयी चुट्टुमन्तरीक्षान्तम्।
कळनादत्ताल्, स्निग्धस्पर्शत्ताल् , विश्वत्तिनु
पुळकं मुळप्पिच्चु संचरिक्कयाय् स्वैरम् ।।४।।

चोलकळाले मुक्ताहारङ्ङळ् मारिल् प्पूण्टुम्,
नीलमां रत्नाकर नीराळं किषिञ्ञ् न्नुम्
मेचकांगत्तिल् सस्यश्यामरोमांचं चेर्न्नुम्
मेवुमग्रजयुटॆ मेघ कैशिकत्तिन्कल्
सप्तवर्णत्तिन् स्वर्ग्य पुष्पङ्ङळाले प्रेमो—
द्दीप्तगण्डनां तरुणारुणन् नवमाल्यम्
मुन्निल् निन्नणियिच्चा वकुन्तळ भारं चुंबि—
च्चुन्निद्र विलासनाय निल्कारुण्टिवकालत्तुम् !
प्रेमत्रालिन्नुं नव्य दम्पत्ति मरॅप्पोला—
णा महाप्रभुवुमॅन् भगिनि, भवतियुम् ।
कालत्ताल् मङ्ङाटात्त, दूरत्ताल् नेर्त्तोटात्त,
कामत्ताल् कलङ्ङात्त, तत्तादृक् प्रेमं वॅलवू ।।५।।

आर्ये, तुम्हारा पुण्य अब भी क्षीण नहीं हुआ है। चैतन्यात्मक सूर्य तुम्हारे प्राणवल्लभ हुए और उन्होंने तुम्हें हरा कौशेय भी दे दिया*। महान् ग्रहोंके इस परिवारके सब अंगोंके लिए श्रीमती वसुन्धरा (भूमि) अब भी एक महान् आश्चर्य है। तुम्हारा वर्ण-रञ्जित जीवन मादक हो गया और चारों ओरका वातावरण श्वासकी सुगन्धसे भारी एवं स्निग्ध हो गया। अपने कल नाद और स्निग्ध स्पर्शसे विश्वको पुलकित करती हुई तुम निर्विघ्न घूमती रही ।।४।।

नदियोंके मुक्ताहार छातीपर पहने, खिसकनेवाला नील रत्नाकर रूपी रेशमी वस्त्र धारण किए, मेघके अंगोंमें वनस्पतियोंका श्यामल रोमाञ्च लिए रहनेवाली बड़ी बहनके मेघ रूपी केशमे सात रंगोंवाले स्वर्गीय पुष्पोंकी नई माला सामनेसे पहनाते और उसके केशको चूमते हुए, प्रेमसे दीप्त कपोलवाला तरुण सूर्य विलासी होकर अब भी खड़ा रहा करता है। बहन, तुम और वह महाप्रभु, परस्पर प्रेममें अब भी नए दम्पति जैसे दिखाई देते हो। ऐसे प्रेमकी जय हो, जो काल बीतनेके कारण फीका न पड़ता हो, दूरीके कारण जिसमें कमी न आती हो और कामसे कलुपित नहीं हो जाता हो ।।५।।

---

* विवाहके अवसरपर वर द्वारा वधूको वस्त्र देनेका रिवाज है।

भूतधात्रियाय्, मूर्तक्षमयाय्, स्वसंतान--
प्रीतयाय्, सुमंगलियायॆष् विश्वंभरे,
नीकुटुंबिनीरत्नमातृकयायि, क्कर्म--
व्याकुलयायि स्वीयप्रापंचिकोद्देशत्तॆ
स्वयमूहिप्पू, नेटान् यत्निप्पू कूटॆ क्कूटॆ ;
प्रियसोदरि, नमिक्कट्टॆ ञान् गतिनोक्कि !
सुन्दरि, लावण्यत्ताल् देवनारिमारात्म--
निन्दनं स्वयं चॆय्तुपोकुं निन् प्रपौत्रिमार्
अकलत्तु निन्नार्त्तियोटु ञान् करं नीट्टु--
मकलंक सौभाग्य मार्न्नमक्कळॆयेन्ति,
'अम्पिळियम्मानॆ क्काण्क, काण्कॆ न्नुल्लासा--
लम्पियन्नुर चॆयव तॆङ्ङानुं ञान् कॆळक्कुम्पोळ
ऎन्नॆटॆ मुखंतिळङ्ङुन्नॊरा त्तिळक्कं नी--
यॊन्नु कण्टॆकिल्, सत्यं, ञान्भिमानिक्कुन्नु ! ।।६।।

ज्ञानत्तॆ, स्सौन्दर्यत्तॆ, द्धर्मत्तॆ, च्चिरंतन--
ध्यानत्ताल् साक्षात्करिच्चखिल प्रपंचत्तॆ
चेतना प्रकाशत्ताल्, मधुरप्रसादत्ताल्
नूतनमाक्कान्, निण्यनूतनमाक्कानार्य,
धन्याग्र्याकुं निन्टॆ मक्कळ् नेटुन्नू मेन्मे--
लन्यादृक् प्रभावङ्ङळ्--अवर्क्कॆ न्नाशीर्वादम् ! ।।७।।

भूतोंकी धात्री, क्षमाकी मूर्ति तथा अपनी सन्तानोंसे स्नेह करनेवाली और सुहागिन होकर रहनेवाली हे धरित्री! तुम कुटुम्बकी श्रेष्ठ निर्देशिका बनकर और अपने कर्मोंमें लगकर, अपने जीवनके उद्देश्यका स्वयं अनुमान करती हो और बार-बार उसकी प्राप्तिका प्रयत्न करती हो। प्रिय बहन, तुम्हारी यह गति देखकर मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे सुन्दरि! जिसके लावण्यको देखकर देव-नारियाँ भी अपनी निन्दा करने लगती हैं, वे तुम्हारी प्रपौत्रियाँ, उनकी तरफ मैं दूर खड़ा होकर बड़ी चाहसे हाथ बढ़ाया करता हूँ, अपने निष्कलंक सौभाग्यवाले बच्चोंको लिए जब चन्दा-मामाको देखनेके लिए बड़े उल्लाससे कहती हैं और वह कथन मेरे कानोंमें पड़ता है, तब मेरे मुखपर झलकनेवाली वह चमक तुम एक बार देखती! सचमुच मैं अभिमान करता हूँ ॥६॥

आर्ये, ज्ञान, धर्म और सौन्दर्यको चिरन्तन ध्यानसे प्राप्तकर सारे विश्वको चेतनाके प्रकाश और मधुर प्रसादकासा नित नया बनानेके लिए, धन्योंके अग्रगामी तुम्हारे पुत्र अनन्य प्रभावोंको अधिकाधिक प्राप्त करते रहते हैं। उनको मेरा आशीर्वाद ॥७॥

मानव मनोमय तेजो मंडलं तूकु--
मानव नव प्रभाकन्दळङ्ङ ळिल्लॅकिल्
आयिरं नक्षत्रङ्ङळुज्ज्वलिच्चालुं शून्य--
मायिरुळटञ्ञातायिरि क्कुं महाविश्वम् ।
नामभिमानिक्कॅण्ट सत्यं ञानुर चॅय्कॅ--,
या मनोहरमुखत्तॅन्तिनी शोकच्छाया ?
साहसपरन्माराय्, कलहप्रियन्माराय्
स्नेहहीनराय्, भातृ द्रोहलीलराय्, मक्कळ्
हृदयं नोविक्कुन्नुण्टाकिलुं, मनस्विनि,
सदयं सहिच्चालुं; नन्नावुमा वत्सन्मार ।
स्वागतमरुळुवान् कात्तुनिल् क्कुन्नू महा--
भागरामवक्कुं ञानॅन्ट् मंडलत्तिकल् ।
केवलं मृतप्रायनामॅनिक्कभिनव--
जीव चैतन्योन्मेषं भागिनेयरेकट्टे !
शान्ति तन्नजरामरानंदसौभाग्यत्तिल्
नींतिटान् पठिप्पिक्कुं; अम्मामनाणल्लो ञान् ॥८॥

कालपाशत्ताल् स्वयं बन्धिच्चु तन् कन्नालि--
क्कोलिनाल् नयिक्कुन्नू विधि, हा विश्वङ्ङळे ।
ऍन्तिनाणॅङ्ङ ळॅट्टिक्काणॅन्नु चोदिप्पानॉच्च
पॉतिट्टुन्निल्लङ्ङाक्कुं, निन् धीरपुत्रक्कॅन्ये ।
शूररामवरयक्किकल्लवट्टॅयॅ श्शुद्ध--
शून्यतयुटॅ महाबलि पीठत्तिल् च्चावान् ।
लीलयिल् क्कयरवर् पिटिक्कुं; विधि वीट्टु-
वेलक्कु निल्क्कुं; पुल्लुं वॅळ्ळवुमवक्केकुम् ॥९॥

मानवके मनोमय तेज-मण्डल द्वारा विकीर्ण हुई वे नई-नई प्रभा-किरणें न होतीं तो हजार नक्षत्रोंके चमकनेपर भी यह विराट जगत् शून्य और तमोमय ही रहता। जिस सत्यपर हमें अभिमान करना है उसका जब मैं विस्तार कर रहा हूँ, तब तुम्हारे मनोहर मुखपर शोककी यह छाया क्यों? अविचारी, कलहप्रिय, स्नेह हीन और भ्रातृ द्रोहको लीला माननेवाले होकर तुम्हारी सन्तानें तुम्हे पीड़ा तो जरूर दे रही हैं; फिर भी, हे मनस्विनि! सदय होकर उसे सह लो। वे वत्स निश्चय ही सुधरेंगे। मैं अपने मण्डलमे उन महाभागोंका स्वागत करनेकी प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा हूँ। वे भानजे मुझ मृततुल्यको अभिनव जीव चैतन्यका उन्मेष दे दें। मै उन्हें शान्तिके अजरामर आनन्दके उद्धारार्थ तैरना सिखाऊँगा। उनका मैं मामा तो हूँ ही।।८।।

विधि ब्रह्माण्डोंको काल रूपी पाशसे बाँधकर अपनी लाठीके सहारे आगे बढ़ा रही है। यह गमन क्यों और कहाँ? यह पूछनेके लिए तुम्हारे धीर पुत्रोंको छोड़कर और किसीकी आवाज नही उठती। वे शूर वीर है। वे विश्वको निरी रिक्तताकी बलि-पीठपर मरने नही देंगे। वे उस रस्सीको जरूर थाम लेंगे। भाग्य उनके घरका काम करेगा वे उनको घास और पानी देंगे।।९।।

आ महाग्रहतारा यूथ मोरोन्नुं मर्त्य--
कामधेनु संघात मायिट्टु मारुं नूनम् ।
प्रीतमायूथं मर्त्यवंशमोहन सर्ग—
गीतत्ताल् स्निग्धार्द्रमाम् अकिट्टुं चुरन्नॅत्तुम् ।
आ दिन मकलॅयल्लॅन्नरिञ्ञा ह्लादिक्कू
मेदिनि, भगिनि, निन् तनयक्काशीर्वादम् ।।१०।।

बड़े-बड़े ग्रहों और नक्षत्रोंके समूह उनके लिए कामधेनुओंके झुण्ड बन जाएँगे। मर्त्य वंश (वंशबाँस-बाँसुरी और कुल) के मोहन सृष्टि-गीतोंसे स्निग्ध और आर्द्र हुए थनोंसे दूध निकालते हुए पास पहुँच जाएँगे। वह दिन दूर नहीं है, यह समझकर प्रसन्न हो जाओ। मेरी धरती बहन, तुम्हारे पुत्रोंको मेरा आशीर्वाद है! ॥१०॥

---

११. वन्दनं परयुक

वंदनं परयुक, भारतांबिके, दैवं--
तन् दय क्कोंह्टि तन् असिधारयिल् क्कूटि,
दूरदुष्कर यात्र निर्वहिच्चिचता, दीना--
कार यायालुं, रक्तं मॅय्यिल् निन्नॉलिच्चालुम्
इन्नलॅ प्पुच्छं पूण्ट राज्य लक्ष्मिकळ् वन्नि--
न्नुन्नतात्भुत स्नेह मधुरं पुणरवे,
मंगल स्वातंत्र्यत्तिन् उज्ज्वलोज्ज्वलमाय
मंजुळ प्रभातत्तिलविटुन्नॅत्ति च्चेर्न्नू ।।१।।

प्राचियुं प्रतीचियुं मुषक्कुं जयारवम्
वीचियाय्युयर्न्नॅत्ति मुक्कुन्नु हिमवानॅ;
पौरर् तन् हृन्नीडत्तिल् निन्नुयर्न्नानंदङ्ङळ
सौरमार्गत्तिल् चॅल्वू कॉटि तन् चिरकिन्मेल् ।
रक्तदाहमार्न्नोरु साम्राज्य सिंहत्तिन्टॅ
शक्तवुं कुटिलवुमाकियोरॅकिर ल्लों,
काणुक, कॉषिञ्ञाता किटप्पू निरं मङ्ङ--
त्ताणुपों चन्द्रक्कल पोलॅयीपुलरियिल् ।।२।।

इरुळिल् त्तिलङ्ङिय कण्णुकळ्, चरित्रत्ति--
न्नरुकिल् काणां मायुं रण्टु तारकळ् पोले ;
निन् मुग्ध माकुं कालिल्, सटयाल् परुषमाम्
तन्मुखमुरुम्मि क्कॉण्टा वृद्ध सिंहं निल्पू ।
वन्य नीति कळतु केवलं मर क्कुमो !
धन्यमां निन् सौहार्द्द मॅन्नॅन्नुं पुलर्त्तुमो ।।३।।

११. वन्दन करो

हे भारत माता! ईश्वरकी दयाकी वन्दना करो। अहिंसाकी असि धारसे होकर दूर और दुष्कर यात्रा करते-करते और फलस्वरूप दीनाकृति हुए और रक्त-रञ्जित शरीर लिए हुए, कल तक जिन राज्य लक्ष्मियोंने तुम्हारा तिरस्कार किया था उनके द्वारा बड़े आश्चर्य और स्नेहसे गले लगाये हुए तुम आज शुभ-स्वातन्त्र्यके उज्वल प्रभातको पहुँच गई ॥१॥

पूर्व और पश्चिमसे मचाया जानेवाला जय-घोष तरंगोंके रूपमें आकर आज हिमवानको भी डुबो रहा है। नागरिकोंके हृदय रूपी नीड़से उठकर आनन्द झण्डोंके पंखके बल सूर्य-पथ तक पहुंच जाते हैं। देखो, रक्त-पिपासु साम्राज्य सिंहके बलिष्ठ और कुटिल दंष्ट्र इस उषामें फीके होकर डूबने वाली चन्द्रकलाकी तरह उखड़े पड़े हुए हैं! ॥२॥

अन्धकारमे चमकी हुई आँखें इतिहासके किनारेपर अस्त होने-वाले दो नक्षत्रोंकी तरह दिखाई देंगी। तुम्हारे पैरोंपर सदासे परुष अपने मुखको रगड़ते हुए वह बूढ़ा शेर खड़ा है। क्या वह अपनी जंगली नीतियोंको भूल जाएगा? क्या वह तुम्हारे धन्य सौहार्दका सदा निर्वाह करता रहेगा? ॥३॥

वन्दनं परयुक्, धर्मपालिके, दैवं
तन् दयक्कानंदाश्रु गद्गद् मृदुस्वरम् ।
पावने, पौरस्त्यमां दिङ्मुखं तुटुक्कुन्नू
तावकस्वातंत्र्यत्तिन् स्वच्छमामुदयत्तिल् ।
ऍन्तितिङङनॅ शोण शोण माकुवान्? ओर्त्ताल्
निन्तिरुवटियुटॅ हृदयं तकर्न्नुपोम् ।
इन्नलॅ त्तिरुवुटल् वरियॅच्चुट्टि. च्चुट्टि.,
अन्नॅटुं कष् ु मर्त्तिकल् नावुकळाट्टि
आयिरं करितुरुकरयिल् क्कूटि त्तन्टॅ
वायिटक्किकटॅ क्काट्टि प्पुळयुं स्वेच्छातंत्रम्
विष् ुङिङ ञॅरिच्च निन् प्रिय पुत्रर् तन् रक्त—
मॉष् ुकि नुरक्कयाणिप्पॉष् ु मतिन् पिन्पे ।।४।।

ग्रामवुं, नगरवुं, वयलुं, काटुं, मेटु—
मा महा धीरन्मार् तन् विटरुं स्मृतिकळाल्,
अवतन्नितळुकळ् वीशिटुं वर्ण्णङङळाल्,
अवयिल् त्तिङङुं त्यागोन्माद सौरभङङळाल्,
इन्नु कोळ् मयिर्, क्कॉळवू; निन् कण्णिल् निन्नुं रण्टु
मून्नु निर्म्मलस्नेहानुग्रहकणिककळ्
पूतमां स्वातंत्र्यत्तॅ श्वसिक्कान् जीविक्कात—
ज्ञातराय् वीणा वीर पुत्ररिल् पॉषिञ्ञावू ।।५।।

हे धर्मका पालन करनेवाली ! गद्‌गद् हृदयसे आनन्दके आँसुओंके गीले नेत्रोंसे गद्‌गद् एवं मृदु वाणीसे ईश्वरकी दयाकी प्रार्थना करो। हे पावने ! तुम्हारी स्वतन्त्रताके स्वच्छ उदयपर पूर्व दिशाका मुख लाल हो जाता है। वह क्यों लाल-लाल हो गया ? उसको याद किया जाए तो तुम्हारा हृदय चूर-चूर हो जाएगा। जिसने कल तक तुम्हारे शरीरको कसकर बाँध रखा था, जो ऊँची फाँसीके ऊपर अपनी जीभ हिला रहा था, जो हजारों काले कारागारोंके द्वारा अपना मुँह दिखाते हुए रेंग रहा था, उस स्वेच्छाचारने तुम्हारे जिन पुत्रोंको निगल कर घोंट डाला था, उनका रक्त बहते-बहते अब भी उसके पीछे उफन रहा है ॥४॥

ग्राम और नगर, खेत,वन और पठार उन वीरोंकी खिलनेवाली स्मृतियोंसे, उन स्मृतियोंके दलोंके वर्णोंसे और उनमें भरे हुए त्यागोन्मादके सौरभसे आज रोमाञ्चित हो रहे हैं। तुम्हारी आँखोंसे निर्मल स्नेह और अनुग्रहकी दो-तीन बूंदें उन वीर पुत्रोंपर छिटक जाए, जो पवित्र स्वातन्त्र्यके श्वसनके लिए न रहकर बिना किसीके जाने-पहचाने गिरे हैं ॥५॥

वन्दनं परयुक, वीरमातावे, दैवम्
तन् दयक्कभिमान दीप्तमामात्मावोटॅ !
चङङ्ल विधिकृत मॅन्नु वच्चा दास्यत्तिन्
त्तॉङङल् त्तान् तनिक्कलंकारमाय् वारित्तुक्कि,
भीरुवाय्——स्वातंत्र्य मॅन्नुच्चरिक्कुवान् पोलुम्
भीरुवाय्–तळर्न्न निन् जीवितं मयङङुम्पोळ्,
निन्मान्यपुत्रन् वीरतिलकन् स्वातंत्र्यं निन्
जन्मावकाशं तानॅन्नाद्यमाय् प्रख्यापिक्के
नटुङङी निन्नात्मावु 'यूनियन् जाक्का' टुन्न
नॅट्टुता मत्युन्नत ध्वजत्तिन् तरयोटे ।
ऍकिलु मतिन् कट पुषङङीलतिन्निरुळ्
तंकिटॅ विषल् नीण्टू निन् चरित्रत्तिल् वकूटी ।
क्रमामतिन्नटि कुतिरान् स्वरक्तं नी
धार धारयायॅत्र पकर्न्नीलतिल् प्पिन्नॅ ।
ऍत्रयो किरीटत्तिन् कल्लटिच्चुर प्पिच्चो——
रत्तर वकुमेलॅत्र साहसं तकर्न्नीला ॥६॥

धर्मत्तिन् नवायुध शालयिल् निन्नुं पिन्नॅ——
क्कर्मकोविदन् सत्यसंगरन् शुचिव्रतन्
वाळिनाल् मुरियातॅ, तीयिनाल् दहिक्कातॅ
बाच्चिटुमॉरायुधं एन्ति गान्धिजि यॅत्ति ;
विनयं पठिच्चपोलक्कॉटियता, धीर
सुनये, निन्पादत्तिल् तल ताष्त्ति निन्नल्लो ॥७॥

वीरोंकी माता ! अभिमानसे उद्दीप्त आत्मा लिये हुए ईश्वरकी दयाको प्रणाम करो। परतन्त्रता या बन्धन विधिका विधान ही है—इस प्रकार सोचकर उसकी शृंखलाओंको अपने अलंकारके रूपमें लटकाए हुए और इतना डरते हुए कि 'स्वतन्त्रता' शब्दका भूलसे भी कहीं उच्चारण न हो पाए, जब तुम्हारा जीवन थककर सो रहा था, तब तुम्हारे माननीय पुत्र तिलकने पहले-पहल घोषित किया कि 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।' तब तुम्हारी आत्मा यूनियन जैकके लम्बे ध्वजके साथ-साथ काँप उठी। फिर भी उसकी जड़ उखड़ी नही। उसकी तमोमय छाया तुम्हारे इतिहासपर और अधिक बढ गई। तुमने उसकी नीवको तर करनेके लिए उसके बाद भी अपने रक्तकी कितनी धाराएँ न बहा दीं ! कितने ही किरीटोंके पत्थरोंसे मजबूत किये हुए उस चबूतरेपर कितनोंके साहस न टूटे ! ।।६।।

तदनन्तर कर्मकुशल, सत्यके योद्धा और पवित्र व्रतवाले गाँधीजी धर्मके आयुध भण्डारसे चमकीला एक ऐसा हथियार लेकर आए जो तलवारसे नहीं कटता और आगसे भस्म नहीं होता। हे धीर और अच्छी नीति रखनेवाली। उस समय वह झण्डा तुम्हारे चरणपर सिर झुकाए खड़ा रहा मानो उसने नम्रता सीख ली हो ।।७।।

वंदनं परयुक, विश्ववन्दिते, दैवम्
तन् दयक्काशाफुल्ल स्वच्छमानसत्तोटॅ।
कालं निन् धर्म्मार्जित स्वातंत्र्यमुद्घोषिप्पान्
नील निर्म्मल शब्द गुणमा माकाशत्तॅ
नोक्कुक, महाघंटयाक्कि वार्त्तु, नालु
दिक्कुकळिरुळ् त्तुणि यतिल् निन्नूर्त्तीटुन्नु।
श्रीलमा मणियता ञ्ञालुन्नु महा विश्व—
शाल तन् मध्यत्तिकल् प्रिय दर्शनाकारम्।
मुन्परिञ्ञिञ्ञाट्टिल्लात्त मादक स्वातंत्र्यत्तिन्
सम्पन्नपानत्ताले कूत्ताटु मोरो काट्टु.म्
चलिक्कॅ च्चलिक्कॅनिन् पूर्णमंगळत्तिन्टॅ
यॉलितान् तुळुम्पुन्नु चक्रवाळत्तिन् वक्किकल्।
वीर मद्दळ मुख निर्ग्गळत्कळारावो—
दार माक्कुन्नु मून्नु सागर मिस्सन्दर्भम्॥८॥

शारद दिनोदय श्रीनिवर्त्तुन्नू स्वच्छ—
गौरमां वॅळिच्चत्तिन् वॅण्कॉट्टु. क्कुट मन्दम्।
उन्नत स्वातंत्र्यत्तिन् रत्न पीठत्तॅद्देवि,
वन्नलंकरिच्चालुं! निन् नामं मुषङ्ङट्टे,
नूरुभाषयिल्, नूरु नूरु गानत्तिल्, नूरु—
नूरु नूरन्ताराष्ट्र मंडलङ्ङळि, लम्मे॥९॥

वंदनं परयुक, रंजित विश्वे, दैवम्
तन् दय क्ककुन्धर सुन्दराननयायि!
अंब, निन् स्वातंत्र्यत्तिन चिह्नत्तॅप्पारिक्कुनि—
तंबरं नीलच्छाय माय तन् कुप्पायत्तिल्।
उन्मुखं हिमवानुं विंध्यनुं मलयनुम्
नम्मुटॅ पताक युत्पुळकं दर्शिक्कट्टे॥१०॥

विश्ववन्दिते, आशासे विकसित स्वच्छ मनसे ईश्वरकी दयाका अभिवादन करो। काल धर्म द्वारा अर्जित तुम्हारे स्वातन्त्र्यकी घोषणा करनेके लिए नील, निर्मल और शब्द-गुण वाले आकाशको घण्टेके रूपमें ढाल दिया है, वह देखो! चारों दिशाएँ उसके आधार ऊपरसे अन्धकारपर (उद्घाटनमें) हटा रही हैं। वह श्रीयुत घण्टा महा विश्वशालाके मध्य भागमें सुन्दर आकृति लेकर लटक रहा है। जिसका अब तक बिलकुल ज्ञान न था, उस स्वातन्त्र्यके पानसे मदमस्त पवन जब चलता है, तब तुम्हारे पूर्ण मंगलकी ही ध्वनि क्षितिजके किनारे उमड़ रही है। तीनों सागर इस सन्दर्भको वीर मद्दळों (एक वाद्य विशेष) के मुखसे निकलनेवाले कलरवसे भर रहे हैं ।।८।।

शरत्की उषाकी श्री, प्रकाशकी स्वच्छ और धवल छतरी धीरे-धीरे खोल रही है। देवि, स्वातन्त्र्यके ऊँचे रत्न पीठपर आ विराजो। माता, सैकड़ों भाषाओं, शत-शत गानों और शत-शत अन्तर्राष्ट्र मण्डलोंमें तुम्हारा नाम गूँज उठे ।।९।।

विश्वको रञ्जित करनेवाली, सुन्दर मुखको ऊपर उठाते हुए ईश्वरकी कृपाका वन्दन करो। माँ, आकाश अपने नील और स्वच्छ कुर्तेपर तुम्हारे स्वातन्त्र्यका चिह्न ही फहरा रहा है। हमारे हिमालय विंध्य और मलय हमारी पताकाको उन्मुख और रोमाञ्चित होकर देख लें ।।१०।।

एँङङमिन्नविटत्तँ यभिमान त्तोटॉप्पम्
पॉङङुमी त्रिवर्णङङळ् चक्रांक मनोज्ञङङळ्
लीलयिलपूर्वाभिमानत्तिल् पाटुं मलं——
चोलकळ् पोलुं मारिन् ञॉरिमेल् कुत्तीटुन्नु।
नाळॅयि स्वातंत्र्यत्तिन् चिरकिन् काट्टे.ट्टि.टु
नीळॅयेषलयापि हर्षत्ताल् विजृम्भि क्कुम्।
नाळॅयिस्समाधान वाग्दानं कण्टिटॅ
नाटुकळाशापिंछं विरत्ति नृत्तं चॅय्युम्।
ई अजय्यतयुटॅ निषल् काणुम्पोळ तोक्किकन्
वाय तन्नत्तान् पॉत्ति निल्क्कु मक्रमि राज्यम् ।।११।।

भयमे, दूरॅ, दूरॅयाशंके, नवयुगो——
दयमाय्, नवरश्मि पूशुमि क्कॉटिकण्टो ?
मेटुकळ्, वयलुकळ काटुकळ कटलुकळ्,
नाटुकळ्, नगरङङळॉक्कॅत्तु मेले मेले,
ई अनुग्रहं तूकुं कॉटि तन् सौम्य स्निग्ध–
च्छाययिल् प्रापिक्कट्टे शांतियुमैश्वर्यवुम्!
वन्दनं परयुक राष्ट्रनायिके, दैवम्
तन् दय, क्कभंगगुर मंगळे, जयिच्चालुम्! ।।१२।।

———

आज हर कहीं तुम्हारे अभिमानके साथ-साथ उठनेवाले, चक्रके चिह्नोंसे मनोहर तिरंगे झण्डेको अपूर्व अभिमानसे लीलाके साथ झरने भी अपनी छातीकी सिलवटोंमें लगा रहे हैं। कल इस स्वातन्त्र्यके पंखकी हवा लगनेसे सातों समुद्र हर्षसे विजृम्भित हो जाएँगे। कल शान्तिके इस वाग्दानको देखकर बहुतसे देश आशाके शिखण्ड फैलाते नाच उठेंगे। इस अजेयताकी छायाको देखकर अत्याचारी राष्ट्र बन्दूकका मुख ढँक कर स्वयं खड़े रह जाएँगे ।।११।।

भय दूर! आशंका दूर!! नया युग उदित हुआ। नई किरणें कहने लगीं, 'यह पताका देखी क्या?' पठार, खेत, वन, समुद्र, ग्राम और शहर—सबके सब वरदान बरसाने वाली इस ध्वजाकी सौम्य और स्निग्ध छायामें शान्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करें। ओ राष्ट्रोंकी नायिके, अभगुर-मगल वाली ईश्वरकी दयाको प्रणाम करो! तुम्हारी जय हो!! ।।१२।।

———

१२. विश्वदर्शनम्

जीवाङ्कुरम्

वन्दनं सनातनानुक्षण विकस्वर--
सुन्दर प्रपंचादि कंदमां प्रभावमे ।
निन्निल् नी कुरुक्कुन्नु, निन्निल् नी विटरुन्नु,
निन् निसर्गाविष्कार कौतुक मनाद्यन्तम् ।
निन्निलॅ स्सर्गात्मक संकल्प चैतन्यत्ताल्
मिन्नुन्नू, तुटिक्कुन्नू, नक्षत्र सहस्रङ्ङळ् ।
प्रळयं निन् निश्शेष संकोचं; स्वयं वीण्टु
मुळवां विकासमो प्रकृति-प्रादुर्भावम् ।
निन् विकासत्तिन् परिणाहमे महाकाशम्,
निन् विकस्वरशीलं मात्रमाणल्लो कालम् ।
ऍत्रयो कषिञ्ञु पोय् संकोच-विकासङ्ङळ्,
ऍत्रयावर्त्तिच्चालुं अविराम भी स्पन्दम् ।।१।।

१२. विश्वदर्शन

[रातके शान्त, निर्मल और नक्षत्राकीर्ण आकाशके उस असीमताके किसी कोनेमे अगर आँखें लग जाएँ, तो उन्हें फेरना बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। आँखोंका छुटकारा तभी हो सकता है जब कि हम अपने हृदयको उसके सामने गिरवी रखे। सदा विकसित होनेवाले उस विश्वमें फँसे हुए एक हृदयकी भाव-विवशताका यह अतीव मार्मिक चित्र है !]

जीवाङ्कुरम्

सनातन और प्रतिक्षण विकसित होनेवाले सुन्दर जंजालके आदि-कन्द रूप प्रभाव, मै तेरी वन्दना करता हूँ। तू अपनेमे अंकुरित होता है; तू अपनेमें खिलता है। प्रकृतिके आविष्कारमें तेरा जो कौतुक है। वह आदि और अन्तहीन है। तुझमें सर्गात्मक संकल्पोंका जो चैतन्य है, उससे हजारों नक्षत्र चमकते है और कम्पित होते है। तेरा पूर्ण संकोच ही प्रलय है; बादको अपने आप होनेवाला विकास ही प्रकृतिका आविर्भाव है। तेरे विकासका विस्तार ही महाकाश है और तेरा विकसित होनेका शील ही काल है। कितने ही संकोच और विकास हो चुके। कितनी ही बार क्यों न दुहराया जाए, फिर भी इस स्पन्दनका अवसान नहीं है ॥१॥

वागगोचर मामिच्चलनं तीवर्कु शक्ति–
वेगत्तिन् चुषिकळिलङ्ङनॅ चुट्टि.च्चुट्टि.,
नुरतन् नुरुङ्ङुकळ् पोलॉषुकुन्नू चंड–
कर चन्द्र नक्षत्र व्यूहङ्ङळसंख्यङ्ङळ् ।
ई नव सर्गारंभ मॅन्नायालॅन्ताणल्प–
ज्ञानमे, तल चुट्टि.ातत्भुतं कंटालुं नी !
ई महात्भुतं कॉण्टु विटरू, स्वयं विश्व––
प्रेमत्तिन् मरन्दत्ताल् मधुरार्द्रमाय् तीरु !
आयिरं प्रपंचत्तॅयुरक्कि प्पुतप्पिच्चुम्,
आयिरं प्रपंचत्तॅ युणर्त्ति त्तालोलिच्चुम्,
स्थिर वात्सल्यत्ताले तुटिक्कुमनादियाम्
करळिलॅनिक्किटं तन्न वात्सल्यं वॅलवू ।।२।।

निजसंकल्पत्तिन्टॅ यूष्मळ प्रकाशत्ताल्
निखिल ग्रहतारा चन्द्रार्क समूहत्तॅ
विरचिच्चॉरास्सर्गकामन, तन् निर्माणम्
विविधस्थानं पूकि निन्नु निन्नात्तोन्मेषम्
नवमाय् प्रतिक्षणं नवमाय्, क्काणान् मोहि––
च्चवसानमिल्लात्तॅ चॅय्तुपोल् परीक्षणम् ।
जलत्ति, लाकाशत्तिल्, करयिल, प्पलकालम्
पलरूपत्तिल् चॅय्तु चॅय्तु पोन्नविश्रान्तम्
सन्तत-स्वयं-परिष्कार-वैभवं कोलु––
मन्तरंगत्तॅ त्तीर्त्तु चरितार्थमाय् पोलुम् ।।३।।

सत्यत्तिल् निन्नुं लावण्यत्तॅ नूल्कानुं नित्य––
प्रत्यग्रप्रभमायि दर्मत्तॅ नॅय्तीटानुम्,
स्वन्तमां परिचयं कॉण्टु शक्तमाय् त्तीरु
मन्तरंगत्तॅ त्तीर्त्त कल्पन जयिक्कुन्नु ।।४।।

वाणीके लिए अगोचर यह चलन जिस शक्तिको गढ़ लेता है, उसके वेगके भँवरमें घूमते-भटकते असंख्य सूर्यों, चन्द्रों और नक्षत्रोंके समूह फेन-खण्डोंके जैसे बह निकलते हैं। इस नई दृष्टिका आरम्भ कभी भी हो तो क्या? हे अल्पज्ञानी, बिना विचलित हुए यह आश्चर्य तू देख! इस महान आश्चर्य से खिल उठ, और विश्व-प्रेमकीके मधुसे स्वयं मधुर और आर्द्र बन। हजार प्रपञ्चोंको सुलाते-ओढ़ाते, हजार प्रपञ्चोंको जगाते-दुलराते और स्थिर वात्सल्यसे लहराते रहनेवाले आदि-हीन हृदयमें जिस करुणाने मुझे जगह दी, उसकी जय हो! ।।२।।

कहा जाता है कि जिसने अपने संकल्पकी ऊष्मा पूर्ण प्रकाशसे निखिल ग्रहों, तारकों, चन्द्रों और सूर्योंके समूहकी सृष्टि की, उस कामनाने अपने निर्माणोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंपर खड़े होकर देखनेकी अभिलाषा करते हुए अनन्त प्रयोग किए। जलमें, थलमें और आकाशमें कई रूपोंसे यह प्रयोग अविकल रूपसे करते हुए वह लगातार अपना परिष्कार करते रहनेकी शक्ति रखनेवाले अन्तरंगकी रचना करके चरितार्थ हो गई ।।३।।

उस कल्पनाकी जय होती है, जिसने सत्यसे लावण्यको कातने और धर्मको सदा नए-नए रूपसे चमकनेवाले ढंगसे बुननेकी, अपने अनुभवोंसे शक्ति रखनेवाले हृदयकी सृष्टि की ।।४।।

ऍन्निलुमा निन् चिंतामणियॅक्कुपयाले
विन्यसि,च्चतिल् त्तन्नॅ साक्षियायिरुन्नु नी,
नूरु वर्णत्ताल्, नूरु नूरु नादत्ताल्, नूरु—
नूरु नूरुदार गन्धङ्ङळाल्, स्पर्श ङ्ङळाल्
विविध रसङ्ङळाल्; संस्कारिक्कुन्नु विश्व——
विपुल स्वाभाविक सौभगं नुकर्न्नोटान् ।।५।।

ऍङ्ङनॅ ञानीयन्तरंगं हा, सूक्षिक्कॆण्टू
मङ्ङल् पट्टाते, पाटुं वटुवुं तटवाते ?।।६।।

सूरनुं नव नव प्रभ नल्कानुं, वर्णो——
दारमां कार् विल्लिनुं तन् कांति पकुक्कानुम्,
कालत्तॆक्काळुं वेगं चलिच्चीटानुं स्नेह——
त्तालपूर्वमां शक्तियेतिनु कल्पिच्चेकि,
आ ममान्तरंगं ञान् स्वार्थ विश्वासत्तिन्टॅ
धूमत्ताल् मलीमसमाक्कातॅ कात्तालुं नी
वन्दनं सनातनानुक्षण विकस्वर——
सुन्दर प्रपंचादि कंदमां प्रभावमे ! ।।७।।

अन्तरङ्गपुष्पम्

मन्दमन्दमॅन् जाड्यं मायुन्नू नीयॅन् चित्त-
स्पन्दत्तिल् च्चॅवियोर्त्त कॉण्टॅ ूण्टॅ पिन्पेनिलके !
ऍन्निलॅ प्राणन्, प्रभातत्तिलॅ क्कुळिरिळम्-
तॅन्नलाल् किळिन्तु पुल्लॅन्न पोल्, निन् स्पर्शत्ताल्,
तिळङ्ङुमाह्लादार्द्र बिन्दुवार्न्नुन्मेषत्तो——
टिळकि त्तन्नत्पत्व मप्पटि मरक्कुन्नु ।
अक्षरं तप्पि त्तप्पि क्कूट्टि वायिप्पान् पोलुम्
शिक्षणं लभिक्कात्त पिंचुकुञ्ञाणॅन्नालुम्,
निन्टॅ यी नानासर्ग मोहन महाकाल——
त्तिन्टॅ धार्मिक भंगि तेटुमॅन् जिज्ञासये
नी कनिञ्ञनुग्रहि केवणमे, सदा जाग——
रूकयायीयाश्चर्य कथ यास्वदिक्कुवान् ।।८ ।

तू मुझमें भी अपना वह चिन्तामणि बड़ी कृपासे रखते हुए उसमें साक्षीत्व के रूपमें रहता है और शत वर्णों, शत-शत नादो, शत शत-शत उदार गन्धों और स्पर्शोंसे तथा विविध रसोंसे उसका संस्कार करता है, जिससे विश्वके विपुल एवं स्वाभाविक सौन्दर्यका वह आस्वादन कर सके ।।५।।

मैं इस अन्तरंगको कैसे सुरक्षित रखूँ, जिससे उसका रंग फीका न हो, और उस पर रगड़के चिन्ह अथवा दाग न पड़ें ।।६।।

सूर्यको भी नई-नई प्रभा देनेकी, रंग-रञ्जित इन्द्रधनुषको अपनी कान्ति बाँट देनेकी, और कालसे भी अधिक वेगसे चलनेकी अपूर्व शक्ति,तूने जिसे बड़े प्रेमसे प्रदान की, उस मेरे अन्तरंगकी स्वार्थके निःश्वाससे तू इस प्रकारसे रक्षा कर कि जिससे स्वार्थकी धूमिल छायासे वह मलिन न हो जाए सनातन और प्रतिक्षण...... वन्दना करता हूँ ।।७।।

अन्तरङ्गपुष्पम्

जव तू मेरे पीछे मेरे हृदय स्पन्दनोंमें कान देते हुए खड़ा है, तब मेरी जड़ता धीरे-धीरे दूर हो जाती है।

मुझमें स्थित प्राण, तेरे स्पर्शसे चमकीले आल्हादकी आर्द्र विन्दु लिये हिल उठते है और अपनी सारी अल्पताकी तरह भूल जाते हैं।

यद्यपि मेरी जिज्ञासा एक छोटा-सा वच्चा है, जिसे अक्षरोंको एक दूसरेसे मिलाकर पढ़नेकी शिक्षा भी प्राप्त नहीं है, फिर भी वह विविध सर्गोंसे मनोहर तेरे इस महाकाव्यके धार्मिक सौन्दर्यका अन्वेषण करती रहती है। तू उस पर अनुग्रह कर कि वह सदा जागरुक होकर इस आश्चर्य-कथाका आस्वादन करे ।।८।।

एषिलम्पाल्प्पूविन् तूमणं तुळुम्पुन्नु
ण्टूषितन् निश्वासत्तिल्; ऍन्तु मोहन रात्रि!
इळकुं मिन्नामिन्नि वैरक्कल्पॉटि वॅट्टि—
त्तिळङ्ङुं निजानील नीराळनिचोळाग्रम्
रोमङ्ङळ् तोरुं कोरित्तरिप्पुण्टाकुं मारु
मामक शरीरत्ति लुलयुम्पॉषी श्याम,
शान्तमा मेकान्तत तन लयत्तिनु चेर्न्ने—
कान्तहृत्यमाय् तीर्त्त विश्वमूक संगीतम्
पल्लविकळुं नाना चरणङ्ङळुं तिरि—
च्चुल्लासपूर्वम् जीवस्थायिकळ् यथा स्थानम्
विनिवेशप्पिच्चे तो रागकल्पन कॉण्टु
तनिये स्वरप्पॅटुत्तीटुवानालापिक्कान्,
तन्कल् त्तानलियुवान् , नक्षत्रसंकेतत्ता,
लंकनं चॅय्युन्नति नारंभिक्कुकयल्ली? ।।९।।

देवि थामिनि, नित्यनवमां विश्वानंद—
भावित मूकोदात्त रागं नीयाला पिक्कू!
उरङ्ङु पारिन् मुग्ध स्वप्नं पोल् विरियुन्न
नरुपूविलुं स्निग्धकवि भावनयिलुम्
अलिवुं माधुर्यवुं संततविकासत्तिन्
चलनङ्ङळुं पकर्न्नागानं मषङ्ङट्टे ।।१०।।

मुन्निलॅन्तपारतयाणतु तुरक्कुन्न—
तॅन्निलॅ क्षुद्राहन्त मञ्ञु पोलिता माञ्ञू।
ऍन् विलोचनं पतिनायिर मिरट्टियाय्—
त्तन् विलोकन शक्ति विकसिप्पिच्चाल्, पक्षे
ई महाकाशत्तिन्टॅ विद्रुत विकस्वर—
सीमतन्नॉरु वॅरु कोणिलॅङ्ङानुं मात्रम्
चितरिक्काणुं सर्ग चैतन्य वैचित्र्यत्तिल्—
चिलतत्भुत स्तब्धं काणुवान् कषिञ्ञॅ वकाम् ।।११।।

कितनी सुन्दर रात है कि भूमिके निश्वासोंमें सप्तपर्णके फूलोंकी गन्ध-उमड़ रही है।

जब इस रातका, उड़ते हुए जुगुनुओंके कणोंसे, अतीव चमकने वाला नीला रेशमी पर्दा, रोम-रोममें पुलक पैदा करते हुए शरीरपर पड़ रहा है, तब यह श्यामा स्वरचित, शान्त एकान्तके लयके योग्य तथा पूर्ण रूपसे हृद्य उस मूक विश्व-गीतको, टेकों और चरणोंमें बाँटकर, जीवोंको यथास्थान बड़े उल्लाससे निविष्टकर, और किसी रागकी कल्पनाके अनुसार स्वरोंका क्रम बाँधकर आलाप करने और अपनेमें पिघलनेके लिए, नक्षत्र स्वरूप संकेतोंसे अंकित करने लगती है न ?।।९।।

देवि यामिनी, विश्वानन्दके ध्यानसे मूक उदात्त रागका तुम आलाप करो। निद्रित भूमिके मुग्ध स्वप्नके जैसे खिलनेवाले नए पुष्पों और स्निग्ध कवि-कल्पनाओंमें करुणा, माधुर्य और सतत विकासके चलनोंको पैदा करते हुए वह गान गूँज उठे ।।१०।।

वह सामने कितने बड़े अनन्तको अनावृत्त कर रहा है! देखो, मेरे अन्दरका क्षुद्र अहंकार, कुहरेकी तरह, गायब हो गया है। अगर मेरी आँख अपनी दर्शन-शक्तिको दस हजार गुना विकसित करे, तो हो सकता है, कि वह इस महाकाशके द्रुत विकासशील सीमाके किसी कोनेमें बिखरे हुए दिखाई देनेवाले सर्ग-चैतन्यकी विचित्रताओंमेंसे किसीको विस्मित होकर देख सके ।।११।।

तन् परिवार् ग्रहोपग्रहङ्ङळोटॉत्तु
सम्पन्न प्रतापरामयुताक्र्कन्मार्
आरुटॅ महासभा मंडप मध्ये सोप——
चार मामेळिक्कुन्नु सभयं यथास्थानम्,
आरुटॅ तिरुमुन्पिल् नर्तनं चॅय्तीटुन्नु
चारु रूपकषस्सन्ध्यकळाज्ञाधीनम्,
कुनियुं शिरस्सिन्कलारुटॅ निदेशत्तॅ——
ज्जनियुं मृतियुमाम् द्वारपालर् च्चुट्टुन्नु,
आ महाप्रभावत्तॅ यॉन्नॅत्ति नोक्कि प्पूर्ण——
कामनावोळं ञ्ञानिग्गोपुर द्वारत्तिन्कल्
एन्नुटॅ हृदंतमामुट्टक्कुं कॉटिप्पाटि
निन्नुकॉळ्ळुवानॅनिक्कनुज्ञ लभिच्चॅकिल् !
वन्दनं सनातनानुक्षण विकस्वर,
सुन्दर प्रपंचादि कंदमां प्रभावमे ॥१२॥

अर्चना

देवि यामिनि, पाट्टु, निन्नूक संगीतत्ति——
न्नाविलेतर भावत्तिन्कल् ञ्ञानलियट्टे !
निन्टॅयो विश्वध्यान निस्तुल्य वैपुल्यं पू——
ण्टॅन्टॅ वॉङ्गमयं विटन्नर्थ पूर्णमायॅकिल !
वन्य चम्पकप्पूविन्नकमे मयङ्ङुन्न
धन्यमां सौरभ्यत्त स्सौम्यार्द्रस्पर्शत्ताले,
उणर्त्तु वात्सल्यमे, मामकान्तरात्मावि——
लुरङ्ङु संकल्पत्तॅ क्कुलुक्कि विळिच्चालुम् ! ॥१३॥

जिसके बड़े सभा-मण्डपपर, अयुतायुत प्रताप-प्राप्त सूर्य अपने ग्रहों और उपग्रहोंके परिवारोंके साथ अपने-अपने स्थानमें समयपर आ मिलते हैं, जिसके सामने, आज्ञाकारिणी, सुरूपिणी उषा और सन्ध्या नाचती रहती है, जिसके निर्देशोंको अपने निमित सिर पर जन्म और मरण रूपी द्वारपालक धारण करते हैं, उस महा प्रभावको झाँकते हुए पूर्ण-मनोरथ होनेतक इस गोपुरके द्वारपर हृदय-रूप डमरू बजाते-गाते खड़े होनेकी आज्ञा मुझे मिल जाती...... ?

सनातन और प्रतिक्षण....... वन्दना करता हूँ। ।।१२।।

अर्चना

देवि रात्रि, गाओ। तुम्हारे मूक संगीतके अकलुष भावमें मैं गल जाऊँ। तुम्हारे विश्-वध्यानकी निस्तुल विपुलता लिये हुए अगर मेरा वाङ्मय खिलकर अर्थपूर्ण हो जाता है............! जंगली चम्पा-पुष्पके अन्दर सोनेवाली धन्य सुगन्धको सौम्य और आर्द्र स्पर्शसे जगानेवाला वात्सल्य, मेरी अन्तरात्मामें सोती हुई कल्पनाओंको झक-झोरते हुए गाओ। ।।१३।।

ऍन्तपारतयाणु नी तुरन्नतॅन् कण्णि—
लॅन्तपूर्वलावण्यपरिपूर्णमां दृश्यम् ।
दूरमे, नमस्करिक्कुन्नु निन्नॅ ञा, नन्ध—
कारमे, निनक्कुमॅन् सादरनमोवाकम् ।
दूरत्तिलट्टुप्प मुण्टट्टुप्पत्तिन्कल् तन्नॅ
दूरवुं, प्रतिभ तन् मोहन प्रपंचत्तिल् ।
अकलं शरियाक्कि, वॅळिच्चं कट्टुंनील—
त्तुकिलिन् तुंटाल् मूटि वॅटिटत्तोळं निर्त्ति,
अन्तहीनमां विश्वत्तिन्टॅ मोहन रूप
मन्तरंगत्तिन् च्छाया ग्राहक स्फटिकत्तिल्
प्रतिबिंबनं चॅय्यिक्कुन्नतिल् निङङळ्क्कोलु —
मति मात्र सामर्थ्य मरिञ्ञु कषिञ्ञु ञान् ।।१४।।

अंजनप्रभं नभो मंडलं स्वयं नील—
कुंजमाय् चुरुङङुन्नू ; श्यामळ दळङङळिल्
पतुङिङ मयङङुमा त्तूमञ्ञ क्किळिक्कुञ्ञान्
मृदु तूवलिन् वक्को शशितन् कृशरेखा !
मंजरिकळॅप्पोलॅ मेलेक्कु मेले तारा—
पुंज मुद्गत रश्मि केसर मनोहरम्
कण्णु पाञ्जॅत्तुं दिक्किलॉक्कॅयुं विटर्न्निट्टु—
ण्टॅण्णमिल्लातानील मारवतं पीतं श्वेतम् !
उतिरुं प्रकाशार्द्र सौम्यरेणुवाल् मिन्नु—
मतिगाढमां अन्धकारवुं रमणीयम् ।।१५।।

तुमने कितनी बड़ी अपारताको खोल दिया! मेरी आँखोंके सामने कितने अपूर्व लावण्यसे परिपूर्ण दृश्य हैं! हे दूरी, मैं तुझे प्रणाम करता हूँ! हे अन्धकार, तुझे भी मेरा सादर नमस्कार!!

दूरीमें निकटता है और निकटातामें ही दूरी है। दूरीको ठीक करते हुए, और प्रकाशको, गहरे नीले रंगके मेघखण्डोंसे ढाँककर आवश्यक मात्रामें सज्जित करते हुए, अनन्त विश्वका सुन्दर रूप अन्तरंग के छाया ग्राहक शीशेपर प्रतिबिम्बित करानेमें तुम्हारी जो भूरि कुशलता है, उसे मै जान चुका हूँ। ।।१४।।

अञ्जनकी प्रभावाला आकाश अपने आप संकोच खाकर नील कुञ्ज हो जाता है। चन्द्रकी पतली रेखा उसके श्यामल दलोंमें छिपकर सोनेवाले पीले तोतेके मृदु पंखका किनारा है क्या? निकलती हुई किरणोंके सरोंसे मनोहर अनगिनत सितारोंके समूह, मञ्जरियोंकी तरह एक-एकके ऊपर जहाँ-जहाँ दृष्टिकी पहुँच है, वहाँ-वहाँ खिल चुके हैं। उनमें कुछ नील हैं, कुछ लाल, कुछ पीत और कुछ श्वेत हैं। प्रकाशकी छिटकनेवाली गीली और मृदु रेणुओंसे चमकता हुआ प्रगाढ़ अन्धकार भी रमणीय है। ।।१५।।

आ लसत्परात्तिन् कणङ्ङळ् पुरटॅन्टॅ
लोल भावनयुटॅ निरमे मारिप्पोयी ।
चिरकुं निव, न्नतु, मूळिक्कॉण्टुयरुन्नू
पिरके चॅल्लानाकातॅन्टॅ वाक्कुळषरु म्पोळ् ।
मुकळिल् त्तिळङ्ङु मा मुग्धमंजरिकळॅ
मुकर्न्नु माधुर्यङ्ङळ् नुकर्न्नु मदमार्न्नु
परन्नुं पलतिलुमिरुन्नुं तन्नॅत्तन्नॅ
मरन्नुं प्रकाशत्तिन् पॉटियालाराटियुम्
तुंग कौतुकं पॉङ्ङि प्पॉङ्ङिप्पोयङ्ङाकाश—
गंगयां लक्षत्रप्पूंकुल मेल् मेवीटुन्नु ।
नाळमॉन्नतिल् निन्नु नीळुन्नुण्टाकां, सूर्य—
गोळ मात्तुम्पत्तता विटर्न्नु तिळङ्ङुन्नु ।
सप्रवर्णमामतिन् केसरं चुंबिच्चूषि
संचरिक्कुन्नू चित्रशलभं पोले चुट्टुम् ॥१६॥

लोललोलमामतिन् चिरकिन् वक्कत्तेतो
मूलयिलिरिक्कुन्नॉरॅ न्नॅयुं काणाकुन्नु ।
अतिलाणणुभेद कोविद मर्त्यन् गर्व—
मतिमात्र मार्न्नार्त्तु निल्पतॅन्तॉरु नाट्यम् !
अतिलाणी विश्वत्तिन् चॅंकोलु तन्टे ताक्कान्
मुतिरुं महाशक्त मर्त्य, नॅतॉरु धार्ष्ट्यम् !
अतिलाणामूलाग्र विश्वसत्यत्तॅ वकण्ट—
मतिमान् शब्दिक्कुन्न, तॅतॉरु वन् कापट्यम् !
अतिलाणत्रे क्रान्तदर्शियाय् भाविक्कुन्नो—
रति भावनाशालि; एन्तॉद्धत मौढ्यम् ।!
दैव पुत्ररुं दैव प्रतिपूरुषन्मारुं
दैवरक्षकन्मारुं दैव ध्वंसकन्मारुम् ॥१७॥

उन लक्षित परागोंके कणोंके लगते-लगते मेरी बारीक कल्पना-का रंग ही बदल गया है। उसका पंख खुल गया है और वह गुञ्जार करते हुए ऊपर उठ रही है। मेरी वाणी उसका साथ रखनेकी शक्तिके अभावसे घबरा उठती है। ऊपर चमकती हुई उन मुग्ध मञ्जरियोंको चूमते, माधुर्यका आस्वादन करते तथा मदमस्त होते, उड़ते और कइयों पर बैठते, अपने को भी भूलते, प्रकाशकी धूलिमें डूबते और बड़े कौतुकसे ऊपर उठते हुए वह आकाश-गंगाके नक्षत्र गुच्छे पर टिकी हुई है। उस मञ्जरीमेंसे एक नाल लम्बित हो निकल रही है, जिसके छोरपर सूर्य का खिला हुआ गोला चमकता है। सात वर्णवाले उसके केसरको चूमते हुए भूमि, चित्र शलभकी तरह उसके चारों ओर मँडरा रही है।।१६।।

उसके लोल पंखके किनारेके किसी कोनेमें बैठनेवाला, मैं भी दिखाई दे रहा हूँ। उसीमें अणुभेदनमें दक्ष मनुष्य बड़ा गर्व लिये हुए शोर मचाते हुए खड़ा है। कितना बड़ा अभिनय है! उसीमें विश्वका राजदण्ड अपनानेका प्रयत्न करनेवाला महाशक्त मनुष्य रहता है— कितनी बड़ी धृष्टता! उसीमें विश्व सत्यके जड़से शिरोभाग तक का दर्शन प्राप्त बुद्धिमान मनुष्य बैठा है—कितना बड़ा छल-कपट!! उसीमें पारदर्शिता का अभिनय करनेवाला भूरि-भूरि कल्पनाका स्वामी है—कितनी उद्धत मूढ़ता!!! दैवके पुत्र! दैवके प्रतिनिधि!! दैवके रक्षक!!! दैवके ध्वंसक!' ।।१७।।

ऍन्न मेल् मुखरमाणी यिळं पाट्टु.वकुञ्ञिान्
पत्रमॅन्नोर्त्तल्लली गोळङ्ङळ चिरिवकुन्नु?
तारकळ् विरप्पतु मर्त्य लोकत्तिन् शवत्युद्--
गारत्तॅ ब्भयन्नल्ल ; मर्त्यरे भ्रमिवकाय्विन्!
तङ्ङळॅ च्चुषन्नॆष् मप्रमेयत कण्टा-
णिङ्ङनॅ नटुङ्ङुन्नतल्परे, गर्विवकाय् विन्।
बुद्धियाय्, हृदयमाय्, कर्मशक्तियाय्, नाना--
सिद्धियाय्, निङ्ङळ् वकुळ्ळिलेतनादि चैतन्यम्
संततम् विटरुन्नततिन्टॅ यिच्छ वकॉत्ता--
णन्तमट्टु.ताम् महाप्रपंचं वळरुन्नु ।।१८।।

तारङ्ङळंस्सत्यत्ति न्नांग्यत्ताल् अणियायि--
दूर दूरमां लक्ष्यं प्रापिक्कान् परवकुन्नु ।
इत्तिरि विनयवुं शमशुद्धमां चेतो--
वृत्तियुं शीलिवकुवान् नमुक्कु साधि च्चॅकिल्--
ऍन्किली महाविशद सत्यगाथतन् मुन्पि--
लिङ्ङनॅ नमुक्कॉरु 'वृन्दपल्लवि' चेक्कॉम्:
वन्दनं सनातनानुक्षण विकस्वर--
सुन्दर प्रपंचादि कंदमां प्रभावमे ।।१९।।

ज्ञानहंकार त्तोटे कय्यि लेन्तियताणी-
पेन्, दक्कट्टे ताषॅ कुनिञ्ञु विर पूण्टुम्।
पोषि याय् तॅण्टिच्युट्टि.नटक्कुं 'जिप्सि' त्पॅण्णा--
णूषि ; युत्तरीयत्तिन् कॅट्टिल् ज्ञानरिवकुन्नु ।
चिन्मयन् मकन् कुञ्ञावा तुरन्नप्पोळ् द्वन्य--
जन्मयामॉरु गोपि यीमहा विश्वाकारम्
भीकर मनोहरं दर्शिच्चु हर्षाश्चर्य--
मूकयाय् क्षणं निन्नु पोयि पो ; लतुपोलॅ,
ऍन्निलॅ विवशयां जिज्ञास निल्पू ; पक्षे,
मुन्निलिक्काणुं सत्यं मूटॉल्लॅन्नॊयिवकट्टे ।।२०।।

———

ग्रह हँस पड़ते हैं——शायद यह सोचकर कि इस छोटी-सी तितली का पंख कितना मुखर है! मनुष्यो, इस भ्रममें न पड़ो कि मर्त्यलोककी शक्तिके उद्‌गारसे भयभीत होकर नक्षत्र काँप रहे हैं। अपने चारों ओर की अप्रमेयताको देखकर ही वे सहम जाते हैं। हे तुच्छ जीवियो, गर्व मत करो। जो आदि हीन चैतन्य तुम्हारे अन्दर बुद्धि, हृदय, कर्म-शक्ति और विविध सिद्धियाँ बनकर सदा खिल उठता है, उसकी इच्छाके अनुसार ही यह अनन्त महा प्रपञ्च बढता है। ।।१८।।

नक्षत्र उस सत्यके संकेत पर पंक्ति बाँधकर दूर-दूरके लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिए उठ रहे हैं। थोड़ी नम्रता और शमसे पवित्र थोड़ी बुद्धिका हम अभ्यास कर सकते——अगर कर सकते तो उस महान विश्वकी सत्य गाथाके आगे हम इस प्रकारकी एक 'वृन्दपल्लवि' (सामूह्य टेक) जोड़ सकते हैं। 'सनातन और प्रतिक्षण..... वन्दना करता हूँ ।।१९।।

मैंने बड़ी अहंतासे कलम हाथमें ले ली थी। और नमित एवं कम्पित होकर मैं उसे नीचे रख दूँ। भूमि पागल होकर घूमती–भटकने वाली 'जिप्सी' लड़की ही है। मैं उसके उत्तरीयकी गठरीमें बैठा हूँ। कहा जाता है जब चिन्मय पुत्रने अपना छोटा मुख खोल दिया, तब धन्य जन्मा एक गोपी उसमें इस महान् विश्वका एक सुन्दर रूप देखकर हर्ष और आश्चर्यसे मौन हो एक क्षण खड़ी रही। उसी तरह मेरे अन्दरकी विवश भावना भी खड़ी है। लेकिन मेरी प्रार्थना है कि सामने दिखाई देनेवाला यह सत्य ढँक न जाए। ।।२०।।